अंक १ वर्ष ३६

वैदिक धर्म

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक सचित्र मासिक पत्र



जनवरी १९५५ पौष २०११

वैदिक धर्म

[जनवरी १९५५]

संपादक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

सहसंपादक

महेशचन्द्र शास्त्री, विद्याभास्कर

विषयानुक्रमणिका

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.

वी. पी. से ५॥) रु. विदेशके लिये ६॥) रु.

यजुर्वेदका सुबोध भाष्य

अध्याय १ श्रेष्ठतम कर्मका आदेश १॥) रु.

„ ३१ एक ईश्वरकी उपासना अर्थात् पुरुषमेध १॥) „

„ ३६ सच्ची शांतिका सच्चा उपाय १॥) „

„ ४० आत्मज्ञान - ईशोपनिषद् २) „

डाक व्यय अलग रहेगा।

मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल, 'आनन्दाश्रम

किल्ला-पारडी (जि. सूरत)

परीक्षा-विभाग

आवश्यक सूचनायें

मध्य प्रदेशको छोडकर अन्य प्रान्तोंके लिये आवेदन पत्रोंके भरनेकी तारीख बढाकर २१ जनवरी १९५५ कर दी गई है। केन्द्रव्यवस्थापक महानुभाव इस सूचनाके अनुसार यथा समय आवेदन पत्र भरकर नियमानुसार पारडी कार्यालय भिजवा दें।

मासिक पत्रोंके विषयमें—

उन केन्द्रोंको मासिक भेजना बन्द किया जारहा है जहाँसे लगातार दो सत्रोंतक कार्य नहीं हो पाया है। जिन केन्द्रोंसे लगातार चार सत्रोंतक कार्य नहीं होगा वे केन्द्र रद्द कर दिये जाएँगे।

प्रमाणित प्रचारकोंको मासिक भेजना बन्द किया गया है। उनसे निवेदन है कि वे परीक्षा-सम्बन्धि आवश्यक जानकारी अपने केन्द्रव्यवस्थापकसे प्राप्त करें।

नवीन केन्द्र स्थापित होनेपर केवल प्रारम्भिणी तथा प्रवेशिकाकी ही पुस्तकें भेजी जाती हैं, परिचय तथा विशारदकी नहीं।

पुस्तकोंके लिये पुस्तक विक्री विभागसे पत्रव्यवहार किया जाय। पुस्तकें वी. पी. द्वारा अथवा मूल्य पेशगी आनेपर ही भेजी जावेंगी।

केन्द्रव्यवस्थापकों एवं प्रचारकोंको पुस्तकोंपर पच्चीस प्रतिशत कमिशन दिया जाता है। डाक तथा पेकिंग आदिका व्यय पुस्तक मंगानेवालेसे अपेक्षित रहता है।

वर्ष ३६

वैदिक धर्म

अंक १

क्रमांक ७३

पौष, विक्रम संवत् २०११, जनवरी १९५५



औरस पुत्र चाहिये।

नहि ग्रभायारणः सुशेवोऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ।
अधा चिदोकः पुनरित्स एत्याऽऽनो वाज्यभीषाळेतु नव्यः।

ऋ० ७।४।८

(अन्य-उदर्यः) दूसरेके पेटसे उत्पन्न हुआ दत्तक पुत्र (सुशेवः अरणः) उत्तम सेवा करनेवाला और ऋण न करनेवाला अथवा झगडा न करनेवाला होनेपर भी (ग्रभाय नहि) स्वीकार करने योग्य नहीं होता। (मनसा मन्तवै उ). वह अपना पुत्र करके मनसे विचार करनेके लिये भी योग्य नहीं है। क्योंकि वह (अध ओकः चित् पुनः इत् स एति) अपने वास्तव पिताके घरकी ओर ही खींचा जायगा। अतः (नव्यः वाजी अभीषाट् नः आ एतु) नवीन बलवान् शत्रुका पराभव करनेवाला औरस पुत्र ही हमें प्राप्त हो।

⊙

भारतीय संस्कृतिके अनुसार

भारतीय संविधानकी समालोचना

(लेखक श्री. पं. रामावतारजी विद्याभास्कर)

[गताङ्कसे आगे]

प्रतीकार क्या है ? देशव्यापी न्यायसंस्थायें

न्याय लेनेवाली संस्थायें मनुष्य समाजकी स्वाभाविक आवश्यकता है। प्रत्येक मनुष्यसमाज यदि वह सच्चा मनुष्य समाज रहना चाहे तो उसके पास अपनी जनताके लिए राज-व्यवस्था चलानेवालोंसे न्याय लेनेवाली संस्थायें होनी चाहिए। इसलिये होनी चाहिये कि राज-व्यवस्था चलानेवाले लोग राजशक्तिके मदमें आकर न्यायका अपमान करते और प्रजापर अन्याय ढाते हैं। दुःखी दुःखी प्रजा या तो अन्यायका कडवा घूंट पीकर मनको मसोसकर बैठ जाती है या अन्यायका विरोध करके राजशक्तिके मदसे मत्त शासकोंके पैरोंसे कुचली जाती है। यदि मनुष्य समाज राजशक्ति हाथमें रखनेवालोंको न्याय करनेको विवश करनेवाली न्याय संस्थायें बनाकर रक्खे तो यह प्रयोग राष्ट्रके लिये ऐसा रसायन सिद्ध हो कि इससे सारा मनुष्यसमाज अत्यन्त तेजस्वी निर्भीक और आनन्दी बन जाय।

न्याय करना तथा न्याय लेना ये दो पृथक् पृथक् काम हैं। राजशक्तिका काम न्याय तथा शासन करना है। परन्तु न्याय लेना यह तो प्रजाका ही काम है। देशमें कहीं न्यायके नामपर अन्याय तो नहीं होरहा है ? इसकी देखभाल रखना प्रजाके अतिरिक्त और किसका काम हो सकता है ? यदि प्रजा अपने अधिकारके संबन्धमें सो जायगी और उसके पास न्याय लेनेवाली सार्वजनिक शक्तिसम्पन्न संस्थायें नहीं होंगी तो उसे न्याय नहीं मिल सकेगा और वह दुखी संत्रस्त रहती रहती तेजोहीन हो होकर अन्तमें नष्ट हो जायगी। यदि प्रजा अपनेको बचाना चाहे तो उसे देशमें न्याय लेनेवाली संस्थाओंका जाल पूरना ही पडेगा।

शासन करनेका काम राजशक्तिको सौंप तो दिया गया परन्तु राजशक्तिके ज्ञानी होनेका ठेका नहीं है। राजशक्ति अज्ञानी हो तो उसका ध्यान प्रजापर शासनका प्रभाव बैठानेपर ही केन्द्रित रहता है। अज्ञानी राजशक्ति न्यायकी अवहेलना करने लगती है। अन्यायी राजशक्तिकी न्यायकी अवहेलनाको हटाना दुःखी दुःखी प्रजाका काम नहीं है। यह तो राष्ट्रव्यापी प्रभाव रखनेवाली न्यायसंस्थाओंका काम है। चाहे राजशक्तिका काम न्याय और शासन करना, दोनों हों परन्तु अन्यायी शासक न्याय करनेको तब ही विवश हो सकेगा जब न्याय लेनेवाला न्याय लिए बिना माननेको उद्यत नहीं होगा। यदि न्याय लेनेवालेको न्याय लेनेका आग्रह नहीं होगा, तो बताइये अन्यायीको न्याय करनेकी प्रेरणा कहांसे मिलेगी ? इसलिए जहां न्याय और शासन करना राजाका काम है वहां प्रजाका कर्तव्य अपने लिए न्याय लेना और देशके शासनका सुशासन बनाये रखना है। उसे न्याय लेनेके लिए सुयोग्य, सुपुष्ट, सार्वजनिक ख्याति रखनेवाली न्याय संस्थाओंसे सुसज्जित रहना ही होगा।

जो शासन न्यायसे होता है उस शासनको किसी मनुष्यका शासन नहीं कह सकते वह तो सत्यका या ईश्वरीय शासन है। न्यायके शासनमें स्वदेशी विदेशीका भी भेद नहीं घुस सकता। उसे तो केवल न्याय, सत्य या ईश्वरका शासन कहना पडेगा। परन्तु जब शासक अन्यायी होजाय और अन्यायसे शासन करने लगे तब उस शासनको न्यायका न कहकर व्यक्तिका शासन कहना पडेगा। सत्यका शासन ही माननीय होता है। व्यक्तिका शासन माननीय नहीं होता। उस व्यक्तिगत शासनको सहन करना तो उस शासक व्यक्तिकी दासता करना होता है। यदि न्याय लेनेवाले लोग न्याय लेनेमें प्रमाद करेंगे और अपने ऊपर अन्याय हो लेने देंगे तो राजपदोंपर बैठे हुए कर्मचारी शासनशक्तिके मदमें भरकर निःशंक भावसे प्रजापर अन्याय ढाने लगेंगे। वे

लोग कोई अन्याय न कर सकें इसके लिए जहां कहीं मनुष्य-समाज रहता हो वहीं उसे अपने न्याय पानेके स्वाभाविक अधिकारकी रक्षाके लिए अर्थात् अपने न्याय पानेके अधिकारको किसीसे न लुटने और किसीको न निगलने देनेके लिए सर्वत्र "न्याय भवन" जैसे नामोंसे प्रजाको न्याय दिलानेवाली संस्थाओंकी स्थापना करनी होगी और उन संस्थाओंसे शक्ति ले लेकर अपना न्याय पानेका अधिकार बचाना होगा।

शासकोंके हाथोंमें राजशक्ति होनेके कारण इस कामको एक दो व्यक्ति नहीं कर सकते। शासक क्योंकि सबका बनाया हुआ होता है इसलिए उसे सार्वजनिक शक्तिके प्रभावसे ही सुधरा हुआ रहनेके लिए विवश किया जा सकता है। शासक एकाधके कहनेसे नहीं मानता। इस कामको न्याय लेनेवाली सार्वजनिक संस्थायें ही कर सकती हैं। इसके लिये इन संस्थाओंके पास तोप तमञ्चा और सेना आदि युद्ध सामग्री होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। इनके पास तो न्याय-निष्ठा होनेकी आवश्यकता है। इनका काम तो केवल अन्याय-पीडितके प्रति सहानुभूति दिखाकर उसके हृदयको टूटनेसे बचाना, उसे न्याय दिलाना और समाजमें शान्ति रखना मात्र होगा।

न्याय संस्थाओंकी आवश्यकताको भले प्रकार समझनेके लिए आपको यह कल्पना करनी होगी कि किसी राजशक्तिने आपपर ही कोई अन्याय ढाया है। अब आप बताइये कि इस समय आपका मन क्या चाह रहा है? इस समय आपका हृदय अपने कल्पना-राज्यमेंसे किस वस्तुको ढूंढ रहा है? अवश्य ही ऐसे समय आपका अन्यायपीडित हृदय अपने समाजकी सहानुभूति और न्यायनिष्ठा ढूंढ रहा होगा। वह कह रहा होगा कि इस समय मेरे समाजको मेरे साथ सहानुभूति करनी चाहिए और उसे अपना सारा बल लगाकर मुझे न्याय दिलवाना चाहिए। और भी नहीं तो न्यूनसे न्यून अन्यायके विरोधमें अपनी सम्मतिसे तो मेरा साथ देना ही चाहिए। बात यह है कि जब कोई अन्यायपीडित मनुष्यहृदय अपने भौतिक क्षणसे अतीत मानवीय मनो-राज्यमें विचरण करता है उस समय वह स्वभावसे अपने समाजकी निर्भीक सहानुभूति और न्यायनिष्ठासे दूसरी क्या वस्तु ढूंढ सकता है?

इन न्याय संस्थाओंका काम समाजकी शान्तिकी धारामें अखण्डपना लाना है। जिस समाजमें ऐसी संस्थाओंका जाल पूर दिया जायेगा, वहां अन्यायपीडनके समय मनुष्यका मन इधर उधर पथभ्रष्ट होकर उल्टे सुल्टे काम कर बैठनेसे बच जायेगा और न्यायकी भीतपर खड़ा होजाया करेगा। ये संस्थायें अन्यायपीडित हृदयोंको न्यायका अवलम्बन देंगी और उन्हें टूक टूक होकर उल्टा मार्ग पकड़नेसे बचायेंगी। इनके ऐसा करनेसे समाजमें विद्रोह, बगावत और अशान्ति उत्पन्न होनेसे रुकेगी और उसके स्थानपर शान्ति स्थापित हो जायेगी। अन्याय सहना एक राष्ट्रिय व्याधि है। यह व्याधि समूचे राष्ट्रको घुनकी भांति खा जाती है। जो समाज अन्याय सहता है, वही राष्ट्रलोभी लुटेरोंका 'मार्केट' बनता है। जिस समाजमें अन्यायको स्थान नहीं रहता, वहां लुटेरोंके पैर नहीं जमते और वहां उनकी श्येनदृष्टि भी नहीं पड़ती।

यदि मनुष्य समाज मनुष्यसमाज बना रहना चाहे तो उसे अपनी शान्तिकी रक्षाके लिए सर्वत्र न्याय संस्थाओंकी स्थापना करके इन संस्थाओंको अपने तन मन धनसे सींचना चाहिये और फिर सङ्कट पड़नेपर इन्हींसे अपनी शान्तिकी सेवा लेनी चाहिये। न्यायभवनोंकी सेवा करना ही मनुष्य समाजकी विचारधाराको न बिगड़ने देनेवाला एकमात्र उपाय है। इन न्याय भवनोंसे मानवसमाजकी विचारधारा न्यायकी भीतपर खड़ी होजायेगी और समाजमें शान्तिकी धारा बिना रोक टोक बहने लगेगी।

संसारमें तो सर्वत्र भेड़ाचाल पाई जाती है। सारे संसारमें एक ही उल्टी गङ्गा बह रही है। सब राज्य राज्य तो चिल्लाते हैं और अपनेसे बलवान् अन्यायी लुटेरोंको निमन्त्रण देते रहते हैं। सर्वसाधारण नहीं जानता कि सर्वसाधारणको राज्य लेनेकी कोई आवश्यकता नहीं होती। सर्वसाधारण कभी राज्य नहीं मांगता। वह जब कभी राज्य मांगता भी पाया जाता है तब दूसरोंके सिखानेसे मांगता है। सर्वसाधारणको तो न्यायकी आवश्यकता होती है।

एक बात और भी है कि राज्य लेनेवाला बननेवालेको उससे भी पहिले न्याय लेनेवाला बनना चाहिए। जो न्याय के अकेला वही राज्य के अकेला। जो न्याय न ले

सकेगा वह राज्य कैसे ले लेगा ? इसके अतिरिक्त न्यायहीन राज्य तो अभिशाप है और न्यायपर चाहे राज्याधिकार न भी हो तब भी वह स्वयं ही एक अटल साम्राज्य है। परन्तु यह बडे भारी दुःखकी बात है कि राज्यकी मांगका तो डङ्का सर्वत्र सुनाई पडता है परन्तु न्यायकी मांगका सर्वत्र अभाव है। यह बडे आश्चर्यकी बात है कि संसारभरमें या तो राज्य मांगनेवाली या राज्य सम्भालनेवाली केवल दो ही प्रकारकी संस्थायें चल रही हैं और न्यायसंस्थायें कहीं भी नहीं पायी जातीं। परन्तु ध्यान रहे कि न्याय ही राज्यशक्तिका मूलाधार है। जो न्याय राजशक्तिका भी मूल आधार है, किसी देशमें उसी न्यायकी रक्षा करनेवाली संस्थाओंका न होना सचमुच मनुष्यकी बुद्धिका दिवालियापन है। न्याय लेनेवाली जो संस्थायें क्या परशासित और क्या स्वशासित दोनों प्रकारके देशोंमें होनी चाहिये थीं, वे कहीं भी नहीं हैं। यही कारण है कि आज ससारके सब राष्ट्र अत्याचारी व्यक्तियोंके अन्यायी शासनके सामने सिर झुकानेवाले पराधीन बने हुए हैं।

समाजमें जब अन्यायी लोग उत्पन्न हुए उन्हींके साथ साथ न्यायकी दुहाई भी उत्पन्न हुई थी। न्यायकी मांगने ही राज्यशक्तिको बनाकर खडा किया था। समाजने राज्य शक्तिसे अपना न्याय पानेका अधिकार स्वीकार कराकर उसके बदलेमें उसे शासन तथा न्याय करनेका अधिकार दे दिया था। इस प्रकार समाजने अन्यायोंसे बचनेका प्रबन्ध किया था। परन्तु समयके प्रवाहमें बहता बहता समाज जब अज्ञानी होकर अपना ठहराव भूल गया, तब वह यह बात ध्यानमें न रख सका कि 'मैंने ही तो न्याय पानेके लिए राज्यशक्तिको उत्पन्न किया था। मेरा अधिकार तो राज्यशक्तिसे बहुत ऊँचा है'। मनुष्य जाने कि मनुष्य समाजको इस अपने अधिकारको भूलनेका ही उचित दण्ड राजशक्तिके रौंगटे खडे करनेवाले अन्यायोंके रूपमें भुगतना पड रहा है।

सर्वसाधारणके अपने न्याय पानेके अधिकारको ढीला छोड देनेका परिणाम यह हुआ कि राज्य संस्थाओंमें अपवित्रता, उद्दण्डता, मद, अन्यायपरायणता आदि आदि दोष घुस बैठे। इन दोषोंका कारण या उत्तरदायी वही मनुष्यसमाज है जिसने अपनी राजशक्तिको पवित्र रखनेमें प्रमाद किया है। समाजके प्रमादसे आजकी राजसंस्थायें कुछ महत्वाकांक्षी स्वार्थलोलुप लोगोंकी उच्छृङ्खल क्रीडास्थली या लूटका एकाधिकार बन गयी है। समाजके अपना अधिकार भूल जानेसे ही ऐसी विपरीत घटना हुई कि उसीकी रची हुई, उसीका दिया टुकडा खानेवाली राजसंस्थायें अपनी मांको काट काटकर खाजानेवाले बिच्छूके बच्चोंकी भांति उसीको काट काटकर खाने लगीं और उसीपर मन माना अन्याय बरसाने लगी। समाजने जो अपने अधिकारकी उपेक्षा की उसीसे उसकी राजसंस्थायें एक प्रकारका लूटका ठेका बन गई। " इस समाजको हम ही लूटें इसे दूसरा कोई न लूटे " इस प्रकार समाजको अपने जालमें लपेटकर लूटनेका एकाधिकार ही इस ठेकेका रूप रह गया। जबसे इन राज्यसंस्थाओंको लूटके ठेकेका रूप मिला तबसे ये शासनमदसे मत्त हो गईं; अपनी मूलाधार प्रजाके न्याय पानेके अधिकारपर प्रहार करने लगीं और मनमाना बर्त्ताव करनेके लिए निष्कण्टक होगई। यदि राजसंस्था बनानेवाली प्रजा अपने अधिकारको ढीला न होने देनेके लिए राज्यसंस्थाओंको अपने नियन्त्रणमें रखनेके लिये इन्हींके साथ साथ न्यायभवन जैसी संस्थायें भी खडी कर लेती या किये रहतीं तो राज्यसंस्थाये अपने प्रकृतरूपमें रहतीं और उद्दण्ड न होपातीं। भय बिन होय न प्रीति।

समाजमें सदासे भले बुरे दो प्रकारके मनुष्य आते रहते हैं। भलोंका स्वार्थ बुरोंका अनर्थ होता है और बुरोंका स्वार्थ भलोंका अनर्थ होता है। इसलिये भले बुरे दोनोंकी स्वतन्त्रता नामकी तो कोई बात ही हो नहीं सकती। स्वतन्त्रता भलोंकी ही संपत्ति है बुरोंके लिये स्वतन्त्रता नामकी कोई स्थिति संभव नहीं है। भले लोगोंकी भलाई ही उनपर दुष्टोंके हाथों विपत्ति बुला देती है। परन्तु वे किसी भी डराव धमकावसे सत्यको छोडने और असत्यको अपनानेको उद्यत नहीं होते। उनका यह दृढ स्वभाव सत्यद्वेषी मदान्ध अत्याचारीकी इच्छाकी रुकावट बन जाता है। तब भले लोगोंको अत्याचारियोंके हाथों नाना प्रकारकी यंत्रणायें सहनी पडती हैं। पापी शक्तियां उनपर अनेक प्रकारसे आक्रमण करती हैं। ये आक्रमण सचमुच उनपर नहीं होते, किन्तु उनके अपनाये हुए सत्य सिद्धान्तोंपर होते हैं। यदि आक्रान्त व्यक्ति सत्यको छोड दे और उसके अन्यायका विरोध करना त्याग

हे तो आक्रमण बंद हो सकता है। इसलिये उन आक्रमणोंका विरोध करना उस अकेले आक्रान्तकका ही नहीं सत्यप्रेमी मनुष्य समाजके प्रत्येक सदस्यका व्यक्तिगत तथा सामाजिक दोनों प्रकारका कर्तव्य होजाता है।

मानव हृदयमें सत्यनिष्ठ लोगोंके साथ जो हार्दिक सहयोग होता है उस सहयोगको राष्ट्रकी महाशक्ति बनाया जा सकता है। सत्यनिष्ठ लोगोंके साथ जनताका व्यक्तिगत रूपमें हार्दिक सहयोग होनेपर भी सर्व साधारणके इस हार्दिक सहयोगको संगठित रूप न मिलनेसे मानवहृदयकी इस महाशक्तिसे आज तक समाजका कोई कल्याण नहीं हो सका। निःस्वार्थ लोगोंका सङ्गठन ही सच्चा और स्थायी सङ्गठन होता है। क्योंकि वही अन्ततक निभता है। स्वार्थी लोगोंका सङ्गठन स्वार्थ और भौतिक शक्ति तक रहता है। उनका सङ्गठन स्वार्थ पूरा होते ही या भौतिक शक्ति नष्ट होते ही टूट जाता है। यदि समाज सर्व साधारणके इस हार्दिक सहयोग और उनकी कर्तव्य बुद्धिसे कोई लाभ उठाना चाहे तो उसे चाहिये कि वह न्यायभवनों जैसी संस्थायें खडी करे। यदि वह ऐसा कर ले तो उसे समाजका अकार्यकारी सुप्त हार्दिक सहयोग तथा कर्तव्य बुद्धिरूपी शक्तिका अनंत भण्डार समाजकल्याणके लिये प्राप्त हो जाय। तब ये दोनों अबतकके समान पडे पडे व्यर्थ नष्ट न होते रहें। देशोंमें इस प्रकारकी संस्थाओंसे ही सच्ची स्वतन्त्रताका बीज बोया जा सकता है।

प्रजाकी सार्वजनिक मांग पूरी होने लगना ही प्रजाकी स्वतन्त्रता या स्वराज्य है। अब देखना यह है कि प्रजाकी सार्वजनिक मांग क्या है? प्रजाकी सार्वजनिक मांग केवल न्यायकी है। प्रजा केवल न्याय चाहती है। प्रजा केवल इतना चाहती है कि कोई उसपर अन्याय न करे। न्याय ही मनुष्य समाजका बंधन है। न्यायका बन्धन बना रहे तो मनुष्यसमाजमें दिन रात सुख बरसता रहता है। यदि प्रजा न्याय पानेका प्रबन्ध छोड बैठी हो तो अन्यायी लोग व्यवस्था और शान्ति रखनेके लिए बनाए हुए पदोंपर बैठकर व्यवस्था और शान्तिकी ही हत्या करने लगते हैं। समाजमें व्यवस्था और शान्तिकी रक्षा न्यायसे ही होती है। जनताको तो केवल न्याय चाहिए। उसे न तो राज्य लेनेकी आवश्यकता है और न यह सम्भव है। राज्यकी मांग तो कुछ विशेष भौतिक शक्ति रखनेवाले महत्वाकांक्षी लोगोंकी होती है। भोली-भाली जनता कभी-कभी इन्हीं लोगोंके वाग्जालमें फंसकर राज्यके जयघोष करने तो लगती है, परन्तु वह अन्ततक इनके साथ नहीं रहती। इसलिये नहीं रहती कि वह चाहती है कि राज कोई भी करे मुझे तो न्याय मिलता रहे। वह न्यायसे ही पूर्ण संतुष्ट, शान्त तथा सुखी रहती है। संसारभरमें कुछ महत्वाकांक्षी लोग शासनकी डोरियोंको अपने हाथोंमें लेने और रखनेके नाना भांतिके षड्यन्त्र किया करते हैं। इन्हें देशकी लाभ हानिका कोई ध्यान नहीं होता। ये तो दिन रात मच्छी ढूंढनेवाले मछीयारोंके समान केवल अपना महत्व बढानेवाले प्रसङ्गोंको ढूंढने और उन्हींको पकडनेमें लगे रहते हैं। इन लोगोंकी इस प्रवृत्तिने प्रजाका न्याय मांगना छुडवा दिया है। प्रजा इन लोगोंके धोकेमें आकर उस न्यायको मांगना भूल जाती है, जिसकी उसे सच्ची आवश्यकता होती है। प्रजाको तो केवल न्याय ही न्याय मांगना चाहिए। न्याय ऐसी अनुपम तथा निर्विरोध वस्तु है कि इसे देनेसे निषेध नहीं किया जा सकता। प्रजाका न्याय मांगना भूल जानेसे स्वराज्यका सच्चा रूप तो नष्ट हो जाता है और राजसत्ताको पहले हाथोंमेंसे निकलाकर दूसरे हाथोंमें करनेका झूठा झगडा खडा हो जाता है। यह झगडा मनुष्य समाजकी स्वतन्त्रताको शासक बदलनेका रूप दे देता और शासनमें सचाई लानेके उद्योगोंको विस्मृत, स्थगित और परित्यक्त करा देता है। सोचिये तो सही कि न्याय लेना छोडकर शासक बदलनेकी इच्छा कितना भारी देशद्रोह है!

जो शासक अन्यायी हो गया हो, प्रजाको उसके अन्यायका विरोध करना चाहिए, उसपर शासनप्रबंधके न्यायविभागमें न्याय संस्थाओंके हाथ सार्वजनिक रूपमें अभियोग चलाकर उसे सारी जनताकी आंखोंमें गिराना चाहिए और यों अन्यायको सार्वजनिक रूपसें अपमानित करके उसे अपने देशमें असंभव बना देना चाहिए। यदि शासक बनकर बैठे हुए मनुष्योंके अन्यायोंका विरोध नहीं किया जावेगा और उनसे सम्बन्ध रखनेका झूठा लोभ त्याग नहीं दिया जावेगा तो वह उनके अन्यायका मूक समर्थन ही होगा।

शासक स्वदेशी होजाने मात्रसे किसी देशको स्वतन्त्र नहीं माना जा सकता। शासनाधिकारमें अपने देश या अपने सम्प्रदायके प्रतिनिधियोंको बैठा देना स्वराज्य नहीं है। अपनी न्यायनिष्ठापर डटे रहना ही न्यायनिष्ठोंका अपने वास्तविक स्वराज्य है। कोई भी न्यायनिष्ठ हृदय, स्वदेशी मनुष्योंकी धूर्तता और अत्याचारको "स्वदेशकी धूर्तता और अत्याचार" होनेसे पूजनेको उद्यत नहीं हो सकता। न्यायनिष्ठ मनुष्य सदा न्यायनिष्ठाको ही पूजेगा। मनुष्य अपनी अपनी मानसिक स्थितिकी ही पूजा करता है। कौन अन्यायी स्वदेशी शासनको स्वतन्त्र राष्ट्र कहना चाहेगा? किसी शासनका स्वदेशी होना ही यह विश्वास नहीं दिला देता कि वह अच्छा है। जब तक कोई शासन अपनेको अच्छा सिद्ध न कर दे, जब तक वह अपने अच्छा होनेका निःशङ्क विश्वास न दिला दे, तब तक उसे स्वतन्त्र शासन नहीं कहा जासकता। इसी प्रकार किसी राष्ट्रपर विदेशी शासन होनेसे ही उसे परतन्त्र राष्ट्र नहीं कह सकते। यदि विदेशी शासनवाले राष्ट्रने अपना न्याय पानेका अधिकार न छोडा होगा तो उसपर शासन कोई भी करता रहे वह राष्ट्र स्वतन्त्र राष्ट्र ही बना रहेगा। न्याय लेना छोड देनेपर ही कोई राष्ट्र परतन्त्र बनता है। प्रश्न होता है कि क्या अपने देशपर दूसरेका राज्य होने देना, न्याय लेना छोड देनेका ज्वलन्त उदाहरण तथा परतन्त्रताका द्योतक नहीं है? उत्तर यही है कि दूसरोंके हाथोंमें राजको चले जाने देना भी तो इसी बातका द्योतक है कि अपने मनुष्योंके हाथोंमें राजका होनामात्र ही न्यायके अधिकारको सुरक्षित रखना नहीं है। दूसरोंका राज्य होजानेपर इसका सुधार उस दूसरेके शरीरको हटानेमें नहीं, किन्तु अन्यायको हटानेमें ही है। सारांश यह है कि दूसरेके स्थानपर कुछ अपने मनुष्योंका बैठ जाना ही स्वतन्त्रताका द्योतक नहीं है किन्तु अन्यायके स्थानपर न्यायका सुप्रतिष्ठित होजाना ही स्वतंत्रताका द्योतक है। न्यायमें ही स्वतंत्रता है। स्वदेशी मांसपिण्डमें स्वतंत्रता नहीं है। "स्वार्थके विरोध" सेही तो स्वदेशी, विदेशी, तथा पराए अपनेका भेदभाव उत्पन्न होता है। न्याय ही स्वार्थका विरोध मिटा देने वाली सार्वजनिक सम्पद है। न्यायी मनुष्य विश्वव्यापी मनुष्यसमाजका समान सदस्य है।

जिस देशकी प्रजा न्यायभवनों जैसी रूपरेखावाले सार्वजनिक सङ्गठनोंसे अपने न्याय पानेके अधिकारपर डटी रहेगी और अपने जनमतरूपी समाजबलसे अन्यायोंका अपमान तथा क्षोभ करनेपर तुली रहेगी उस राष्ट्रका बाह्य रूप परशासित होनेपर भी उसे परतंत्र राष्ट्र कहना तथा इसको विपरीत अवस्था होनेपर स्वदेशवासियोंसे शासित होनेपर भी उस राष्ट्रको स्वतंत्र राष्ट्र कहना बुद्धिहीनता होगी। इससे यह बात समझमें आई कि प्रजाको न्याय मिलना ही " किसी राष्ट्रके स्वराज्य या सच्ची स्वतन्त्रताका मूलरूप " है। प्रजाको न्याय मिलना ही किसी राष्ट्रमें "सत्यका राज्य" कहा जाता है।

सत्यका राज्य वह राज्य है जिसमें प्रजापक्ष शासकपक्षके ऊपर बैठा रहता है। इसका अर्थ यह है कि प्रजा न्याय लेने पर तुली हुई हो तो शासकपक्षको सचेत रहकर न्यायकी रक्षा करनी पडती है और अपने अन्यायोंको छोडना पड़ जाता है। तब शासकमण्डल अन्याय या उत्पीडन नहीं कर पाता। यही प्रजाका शासकोंपर नियन्त्रण या न्यायदण्ड कहाता है। जब शासकपक्षके सिरपरसे प्रजापक्षका न्यायदण्ड उतर जाता है तब शासक लोग शासनमदसे मस्त होकर शासक न रहकर "लुटेरे" बन जाते हैं और प्रजा प्रजा न रहकर 'भेडोंका झुण्ड' बन जाती है। इससे यह परिणाम हाथ आया कि यदि कोई मनुष्यसमाज सच्ची स्वतन्त्रता चाहता हो तो उसे राज्यसत्ताको दूसरे नये हाथोंमें देनेका प्रश्न न उठाकर अपने देशकी वर्तमान राज शक्तिके ही ऊपर प्रजापक्षके सत्यका प्रभाव बैठानेका प्रयत्न करना चाहिये। देशमें सच्ची स्वतन्त्रताको प्रतिष्ठित करनेके लिए स्थान स्थानपर शासनके असत्यों अर्थात् अन्यायोंको पकडनेवाली और उन्हें हटवाकर देशमें शांति स्थापित करानेवाली "न्याय भवन" नामकी संस्थायें बनाकर सार्वजनिक शक्तियोंसे उन असत्यों या अन्यायोंका अपमान सार्वजनिक रूपमें कराना चाहिए। यह काम एक आध व्यक्तिके करनेका न होकर सबके मिलकर करनेका है। अन्याय व्यक्तिगत विपत्ति नहीं है। अन्यायकी घटनाको व्यक्तिगत घटना समझना भयंकर राष्ट्रिय भूल है। अन्याय तो सार्वजनिक विपत्ति है। यह विपत्ति कब किस पर नहीं आ खडी होगी यह कौन कह सकता है? इसलिए इसका प्रतिकार भी सार्वजनिक शक्तियोंसे ही होना चाहिये और उन्हींसे यह काम लेना चाहिए।

[क्रमशः]

आपसमें प्रेमका बरताव

सहृदयं सांमनस्यम्

अविद्वेषं कृणोमि वः ।

अन्यो अन्यं अभिहर्यत

वत्सं जातमिवाघ्न्या ।।

अथर्ववेद ३।३०।१

आपके लिये मैं ये नियम करता हूं कि, (१) तुम आपसमें कभी द्वेष न करो, (२) हृदयमें सदा उत्तम भाव धारण करो और (३) मनमें सर्वदा शुभ विचार रखो । (४) तथा आपसमें एक दूसरेके साथ वैसा प्रेमपूर्ण बर्ताव करो कि जैसा अवध्य गौ अपने नवजात बछडेके साथ प्रेम करती है ।

भारतीय संस्कृतिका स्वरूप

[लेखाङ्क ४९]

लेखक— पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

शङ्का समाधान

अबतक भारतीय संस्कृतिके विषयमें ४८ लेख लिखे गये हैं और उनका प्रकाशन भी हो चुका है। पाठकोंने इनके विषयमें कुछ प्रश्न उपस्थित किये हैं। उनका उत्तर देना आवश्यक है, अतः संक्षेपसे इन प्रश्नोंके उत्तर यहां दिये जाते हैं।

पुरुषोत्तमरूप विश्व

१ प्रश्न– यह जगत् विनाशी और दुःखमय प्रत्यक्ष दीख रहा है, फिर भी आप इसे 'ईश्वरका स्वरूप' किस प्रकार बता रहे हैं।

उत्तर– इस जगत्को हम ईश्वरका स्वरूप बताते हैं, यह सत्य है; क्योंकि सारे वैदिक ऋषि, उपनिषदोंके प्रणेता, गीताका उपदेश करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण आदि सबने इस सब जगत्को ईश्वरका स्वरूप कहा है। देखिये—

पुरुष एव इदं सर्वं। (ऋ० १०।९०; यजु० ३०।२; अथर्व० १९।६।२)

वासुदेवः सर्वम्। (गीता० ७।१९)

सर्वं खलु इदं ब्रह्म।

नारायण एवेदं सर्वम्।

ओं इत्येतदितं सर्वम्।

इस प्रकारसे वेद-उपनिषद्-गीता आदि माननीय ग्रन्थोंने स्पष्ट रूपसे कहा है। अर्थात् यह हमारी कल्पना न होकर वेदादि शास्त्रोंकी कल्पना है। धर्मविषयक जब सन्देह उत्पन्न हो तो वेदशास्त्रादिके वचनोंको स्वीकार करना चाहिये तथा वे जो कहें उसे मानना चाहिये।

जो दीखता है, क्या वह सत्य है ?

आप कहते हैं कि यह जगत् नाशवान् एवं दुःखमय है; क्योंकि इस बातका प्रत्यक्ष अनुभव किया जारहा है। किसको क्या अनुभव होता है। यह प्रश्न यहां गौण है। प्रतिदिन सूर्य उदित होता है, दोपहरको आकाशमें सिरके ऊपर आ जाता है और सायंकाल अस्त होजाता है, यह सब प्रत्येकको स्पष्ट दिखाई देता है। यह अनुभव एक दिनका नहीं, अपितु प्रतिदिनका है; किन्तु शास्त्रोंका कहना है कि यह सत्य नहीं है– नैवोदेता नास्तमेता एकल एव मध्ये स्थाता। ऐ० ब्रा०

सूर्य उदित नहीं होता, वह अस्त भी नहीं होता, वह तो अकेला मध्यमें अवस्थित है। 'सूर्य घूमता है' की जो प्रतीति होती है वह भ्रम है, सत्य नहीं है। सत्य तो यह है कि सूर्य स्थिर है और पृथिवी हमारे आसपास घूमा करती है, इस कारण ऐसा आभास होता है कि सूर्य घूमता है; किन्तु यह सत्य नहीं है।

प्रतिदिन स्पष्ट दिखाई देनेवाली बात सत्य न होकर उसके सर्वथा विपरीत है। सूर्यको 'रथ' कहा जाता है। सूर्यका रथ प्रसिद्ध है। निरुक्तकार रथ शब्दका अर्थ इस प्रकार करते हैं—

स्थिरतेर्वा विपरीतार्थस्य। निरुक्त०

'स्थिर होनेपर भी जो तद्विपरीत अर्थात् घूमता हुआसा दिखाई पडता है वह रथ अर्थात् सूर्य है।' स्थिर होते हुए भी इसका विपरीत भास होता है। 'स्थिर' धातुसे अक्षरोंका व्युत्क्रम आदि होकर रथ शब्द निष्पन्न हुआ है। स्थिर होता हुआ भी यह चल दीखता है; अतः उसका अन्वर्थक शब्द भी अक्षरोंको उलटकर बनाया गया है! 'स्थिर' के 'थ' और 'र' अक्षरको उलटा कर देनेसे 'र' 'थ' बन जाता है। तात्पर्य यह है कि जो दिखाई देता है या अनुभवमें आता है वह सत्य ही है, ऐसा नहीं है। इस प्रकारके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं।

बालकोंका अनुभव

छोटे बच्चोंको पढना दुःखदायी प्रतीत होता है; किन्तु वही अन्तमें सुखदायी सिद्ध होता है। इसलिये शास्त्रपद्धतिके अनुसार अनुभव करना चाहिये। शास्त्र-दृष्टि सच्ची हुआ करती है। शास्त्र-दृष्टिमें बहुत बडा अनुभव संगृहीत होता है; अतः शास्त्र-दृष्टि सत्य है। हमारा अनुभव कदाचित् गलत हो; किन्तु शास्त्र गलत नहीं होता।

यदि अनुभवको बताना ही शास्त्रका उद्देश्य हो तो शास्त्रकी आवश्यकता ही नहीं है। वह तो आबालवृद्धको होता ही है। इसी अनुभवको सीखनेके लिये शास्त्रके अध्ययनकी कोई आवश्यकता नहीं है। शास्त्र स्पष्ट सत्यको कहता है; अतः शास्त्रका अध्ययन करना चाहिये। देखिये-प्रत्येक मनुष्य यह समझता है कि 'मैं' अल्प हूं। किन्तु शास्त्र कहता है कि 'त्वं ब्रह्म' अर्थात् तू बहुत बडा शक्ति-पुंज है। यह कथन अनुभवके सर्वथा विपरीत है। यहां भी शास्त्र सत्य सिद्ध हुआ और सबको होनेवाला अनुभव असत्य है।

इसी प्रकार यह जगत् नश्वर एवं दुःखमय भासता है, किन्तु यह सब दृश्यमान वस्तु 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म' सचमुच ब्रह्म है, अर्थात् सच्चिदानन्दमय है, ऐसा शास्त्र-कथन है। जगत्के इस दृश्यमान शास्त्रीय सच्चिदानन्द स्वरूपको समझना चाहिये।

गीताने 'वासुदेवः सर्वं' कहकर यह स्पष्ट किया है कि यह सब वासुदेवका स्वरूप है। क्या वासुदेवका स्वरूप दुःखमय होना सम्भव है? नाशवान् होना सम्भव है? कदापि नहीं। अतः हमें शास्त्रकी दृष्टिसे ही इसका अनुसन्धान करना चाहिये।

जिस प्रकार किसी बालकको लगता है कि अध्ययन दुःखमय है, इसी प्रकार साधारण मनुष्यको भासता है कि यहां क्लेश हो रहा है; किन्तु इसका ठीक पता लगना तो शास्त्रीय दृष्टिकोणसे ही सम्भव है।

रूपान्तर होता है

यह विश्व रूपान्तरको प्राप्त होरहा है। रूपान्तरका अर्थ नष्ट होना नहीं है। रूईका सूत, सूतका कपडा और कपडेका पोषाख बनकर जो रूपान्तर हुआ है वह किसीका भी किसी प्रकारसे नाश नहीं हुआ है। मिट्टीका घडा बननेपर या सोनेके जेवर बननेपर कुछ नष्ट नहीं हुआ। रूपान्तर होना तो विश्वका स्वभाव ही है। इससे भय खानेका कोई कारण नहीं है। यह रूपान्तर तो आनन्ददायक है। रूई, मिट्टी और सोनेसे क्रमशः वस्त्र, घडा और आभूषण बन गये। ये समस्त पदार्थ मनुष्यके लिये सुखकी वृद्धि कर रहे हैं। बीज, वृक्ष और उसके फल-फूलोंका आना एक प्रकारका रूपान्तर ही है। ये सब मनुष्यके सुखको बढा रहे हैं, फिर यहां दुःख कहां है? यदि मनुष्य विचार करे तो उसे विदित हो जायगा कि यह विश्व मनुष्यको सुख पहुंचा रहा है और सुखके लिये ही है। इस सुखको अपने उपयोगमें लेकर वह प्रतिक्षण आनन्द पारहा है। ऐसा होते हुए उसको दुःखदायी कहकर निन्दित करना किसे उचित प्रतीत होगा?

बुद्धने संसारका एक पार्श्व देखा और उसीको सत्य मानकर प्रचारित किया अतः उसके विचार सर्वाङ्गपूर्ण न होकर एकांगी हैं। शास्त्र-दृष्टिसे 'विश्व ईश्वरका स्वरूप है' यह सत्य है तथा 'वह दुःखदायी है' यह कथन असत्य है। हमें उस विश्वका उचित उपयोग करना नहीं आता, अतः हमें दुःख प्राप्त होता है। किन्तु यह विश्वका दोष न होकर हमारा दोष है। भलिप्रकार विचार करनेपर यह स्पष्ट हो जाएगा कि हमारे अज्ञानसे हमें दुःख होता है, वास्तवमें विश्व दुःखदायी नहीं है।

दुःखमय जगत्

२ प्रश्न - संसारमें दुःख भरा हुआ है, इस बातसे कैसे इन्कार किया जा सकता है? क्या रोग, मृत्यु, अपमृत्यु आदि दुःखोंसे यह संसार भरा हुआ नहीं है?

उत्तर - इस संसारमें रोग है, अपमृत्यु है और जो जन्मता है उसकी मृत्यु होती है। अतःइसमें रोग, अपमृत्यु और मृत्यु नहीं हैं; ऐसा कोई भी न कह सकेगा। किन्तु ये सब बुरे हैं, घातक हैं या सहायक हैं? इसका विचार करके देखना चाहिये। यदि किसीकी मृत्यु ही न हो तो जबसे सृष्टि बनी है तबसे आजतकके सभी मनुष्य जीवित रहेंगे और परिणामस्वरूप इस धरापर पैर रखनेका भी स्थान नहीं रहेगा। अतः मृत्युके द्वारा स्थान खाली होते रहते हैं और नये उत्पन्न होनेवालोंके लिये स्थान मिलते रहते हैं। यदि मृत्यु अवांछनीय हो तो जन्म भी अवांछनीय होना

चाहिये । ऐसी स्थितिमें घरमें जन्म लेनेवाले बालकका आनन्द हमें किस प्रकारसे प्राप्त होगा? मृत्यु है इसीलिये हमें जन्मका आनन्द प्राप्त होता है ।

पुत्र-जन्मके उत्सव करनेका अवसर न आना कितनी बड़ी आपत्ति है ? प्रश्नकर्ता पुत्र-जन्मका आनन्द तो लेना चाहता है; किन्तु उसे अपने किसी बड़ेकी मृत्युका दुःख नहीं चाहिये ! वास्तवमें देखा जाए तो मृत्युकी पार्श्वभूमिपर जन्मका चित्र अत्यन्त उठावदार दीखता है ।

आधि-व्याधि

यही बात रोगोंके विषयमें है । मनुष्य स्वच्छतापूर्वक रहेगा, यम-नियमका पालन करेगा, ब्रह्मचर्यका पालन उचित मर्यादातक करेगा तथा स्वास्थ्यके नियमोंका पालन करेगा तो उसे रोगोंका कष्ट नहीं होगा। शरीरमें मल संचित हो जानेपर उस मलको बाहर निकाल फेंकनेका निसर्गका नियम है । इस नियमके अन्तर्गत निसर्गकी ओरसे जिस उपायको काममें लाया जाता है वही रोग है । अर्थात् मनुष्यके किये हुए पापोंको धो डालनेके लिये निसर्ग जिस उपायका अवलम्बन करता है उसे रोग कहा जाता है । अतः रोग तो मानवके लिये हितकारक ही है ।

घरकी साफ सफाई करते समय कष्ट तो होता ही है; किन्तु परिणामस्वरूप जब घर स्वच्छ हो जाता है तो वही आनन्दका कारण बन जाता है । यही बात रोगोंके विषयमें है । मनुष्यका रहन सहन यदि ठीक होगा तो उसे रोग हो ही नहीं सकते । मनुष्य गलतियाँ करता रहता है और बदलेमें रोगोंको आमन्त्रित कर लेता है । ऐसी स्थितिमें रोगोंको कोसनेसे क्या लाभ ? सारांश यह है कि रोग एवं मृत्युसे डरनेका कोई कारण नहीं है । ये सब तो मनुष्यके लिये सहायक ही हैं ।

मृत्यु ईश्वर

वेदोंमें 'मृत्यु' ईश्वरकी ही एक संज्ञा है । मृत्युः सर्वहरश्चाहं । (गीता १०-३४) सबका हरण करनेवाली मृत्यु ईश्वरका ही एक स्वरूप है, यह बात स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने कही है । जन्म और मृत्यु ईश्वरके ही रूप हैं । वेद, उपनिषद् और गीताका यही कहना है और यही सत्य ज्ञान है; अतः इसे समझ लेना आवश्यक है ।

नाशवान् जगत्

३ प्रश्न – जगत् नाशवान् दिखाई देनेपर भी उसे ईश्वरका स्वरूप कैसे माना जाय ?

वैदिक ऋषि, उपनिषदोंके द्रष्टा एवं श्रीमद्भागवत्के उपदेष्टाने 'इस सम्पूर्णको परमेश्वरका रूप' माना है । गीता ११ वाँ अध्याय विश्वरूप ईश्वरका ही रूप है, यह बतानेके लिये ही कहा गया है । इसी विश्वरूपमें समस्त कौरववीर सेनासहित मृत्युकी डाढमें प्रवेश कर रहे हैं, अनेक वीर विश्वरूपकी डाढमें चिवल दिये गये हैं, कुछ मरे हुए पड़े हैं और कुछ निरुपाय होकर उस मृत्युकी डाढके नीचे घुस रहे हैं । वहाँपर यह विश्वरूप ईश्वर कहता है कि 'मैं काल हूँ और लोगोंका विनाश करनेके लिये ही आया हूँ । ' यह सम्पूर्ण नाशवान् विश्वरूप ही ईश्वरका रूप है । इसीका गीताने प्रतिपादन किया है ।

यदि मृत्यु ही परमेश्वरका रूप है तो यह प्रश्न ही असङ्गत हो जाता है कि 'मृत्यु किस प्रकार ईश्वरका स्वरूप है? जन्म-मृत्यु आदि सब ईश्वरके अस्तित्वमें एकरूप हो गये हैं । जिससे यह सब उत्पन्न होता है, जिसकी शक्तिसे जीवित रहता है और नष्ट होकर पुनः विलीन हो जाता है उसका नाम ब्रह्म है । इस प्रकार जन्म, जीवन, मृत्यु आदि सभी कुछ–मानवदृष्टिसे चाहे जो कुछ हो–उस ईश्वरका ही स्वरूप है और यही समस्त शास्त्रकारोंका सिद्धान्त है । अतः मनुष्यको उचित है कि वह इसीको मानकर अपना व्यवहार करे । यदि वह स्वयं इसे न समझ सके तो गीताशास्त्रको प्रमाण मानकर उसीके अनुसार आचरण करे और शनैःशनैः उसे समझनेका प्रयत्न करे ।

अंध विश्वास

४ प्रश्न – बिना समझे केवल श्रद्धासे माननेकी बात क्या अन्धविश्वास नहीं है ?

उत्तर – जो भगवद्गीताके वचनको मानना अन्धविश्वासी होना समझते हों उन्हें चाहिये कि वे विवेकपूर्वक जागरूक बनें तथा एक भी बात अन्धे बनकर कभी न मानें । भगवद्गीताके वचनोंको तो वे ही मानें जिनका यह दृढ विश्वास हो कि गीता विशुद्ध दृष्टि प्रदान करनेवाली है ।

घरमें कोई बीमार पड़ जाय तो मित्र आते हैं और अपने विश्वासके किसी वैद्यको बुलानेकी सलाह देते हैं ।

वैद्य बुलाया जाता है और उपचार शुरू होता है। ऐसे अवसरोंपर अन्धविश्वास द्वारा ही वैद्यको बुलाया जाता है, फिर चाहे उसका परिणाम भला हो या बुरा हो, क्यों पहिले अनुभव करके बुलाना सम्भव ही नहीं रहता। ऐसे अनेक उदाहरण हैं। जो कुछ करना हो वह विचारपूर्वक ही करना चाहिये, यह कथन सर्वथा सत्य है; किन्तु माननीय ग्रंथ या शास्त्र अथवा महापुरुषोंपर विश्वास रखना लाभदायक ही रहता है। इन सबके प्रति अविश्वास रखकर, कभी भी लाभ नहीं हो सकता। सदैव अनुभव प्राप्त करके कोई काम करना असम्भव है, यह तो केवल कहना ही सरल है।

श्रद्धा और विश्वास

हमने यहाँ श्रद्धा और विश्वासके महत्त्वका वर्णन किया है। इस वर्णनमें हमने इसमें अवास्थित लाभ एवं हानिकी उपेक्षा नहीं की है। श्रद्धा एवं विश्वासके मध्यबिंदुको कायम रखना तथा उस बिन्दुपर समभावसे अपने मनको स्थिर करना अत्यन्त कठिन है। श्रद्धा आवश्यक है। श्रद्धासे लाभ होता है, ऐसा कहनेपर इसी श्रद्धाके अन्दरसे प्रार्थनाकी दीवारें, प्रार्थनाके चक्र, सामुदायिक प्रार्थना करनेवाली संस्थायें, रामनाम कागजपर लिखाकर उसका हिसाब रखनेवाली संस्थायें उत्पन्न होती हैं। इन सबको देखकर यदि कोई कहे कि विश्वास एवं श्रद्धा कम करो तो उसका फल यह होगा कि हमारा मन अश्रद्ध होकर किसीपर भी विश्वास नहीं करेगा। यह है मनकी अवस्था, अतः बहुत सावधानीसे व्यवहार करनेकी आवश्यकता है। इस स्थानपर इस विषयमें केवल इतना ही सुझाया जा सकता है। इससे अधिक लिखना अनावश्यक है।

श्रद्धाकी मर्यादा

श्रद्धासे होनेवाले लाभकी एक सीमा है। हमारे शरीरके अन्दर जहांतक मनका क्षेत्र है वहांतक प्राथमिक अवस्थामें रोग दूर हो सकते हैं और उनकी उत्पत्ति भी रुक सकती है। यह सब श्रद्धासे सम्भव है। किन्तु बाह्य जगत्‌की चाहे जो बात श्रद्धासे हो जावेगी, ऐसा मानना उस श्रद्धाका दुरुपयोग करना है। इस बातका विवेक ज्ञानसे सम्भव है। मनुष्यको इस मानसशास्त्रका ज्ञान करा देना आवश्यक है। अर्थात् उसे श्रद्धा द्वारा स्वयंका लाभ कर लेना चाहिये और ज्ञानके द्वारा विश्वासका अतिरेक न होने दे। ज्ञानके साथ श्रद्धा अपेक्षित है। ज्ञानरहित श्रद्धा अनपेक्षित है। श्रद्धासे क्या परिणाम होता है, यह बात ज्ञान द्वारा विदित होती है तथा जो ज्ञानी होता है वह अपनी श्रद्धासे अभीष्ट परिणाम निर्माण कर सकता है।

आत्माका स्वराज्य

शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और आत्माकी शक्ति एक अपेक्षा दूसरेकी अधिक है तथा वरिष्ठशक्तिके अधीन नीचेकी शक्तियां कार्य करती हैं। इस बातका ज्ञान उपनिषदोंके मननद्वारा हो जानेपर उसके द्वारा (स्वयकी आत्मबलकी श्रद्धासे) अपने अन्दर तथा दूसरोंके मनपर बहुत काफी इष्ट परिणाम निर्माण किया जा सकता है। आत्मज्ञानके द्वारा उत्पन्न होनेवाली यह श्रद्धा लाभदायक हो सकती है। इसके द्वारा हानि कभी भी नहीं हो सकती। जिन्हें आत्मज्ञान नहीं होता उनमें बढनेवाली श्रद्धा निरी अन्धश्रद्धा रहती है और इससे बहुत अधिक हानि हो सकती है।

वेद, उपनिषद् एवं गीताके युगतकका, सम्पूर्ण साहित्य देखनेपर यह विदित हो जाएगा कि उन युगोंमें ज्ञानजन्य श्रद्धा थी। पुराण, बुद्ध एवं सन्तकालके पश्चात् भोली ज्ञानहीन श्रद्धा उमड पडी है। हमारी प्राचीन परम्पराके अनुसार सत्ययुगमें ज्ञान एवं सात्विकता अधिक थी। आगे चलकर इसका प्रमाण कम होता चला गया। इस आधारपर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वैदिककालमें ज्ञान एवं श्रद्धाकी समतोल अवस्था थी, कलियुगमें यह सन्तुलन नष्ट होगया और ज्ञानरहित श्रद्धा बढ गई। आज हमारा यह कर्तव्य होना चाहिये कि हम जनसाधारणमें ज्ञानका प्रसार करके ज्ञान और श्रद्धाके सन्तुलनको स्थिर करें जिससे कि अन्धश्रद्धासे होनेवाली हानि कम की जा सके और ज्ञानयुक्त श्रद्धासे लाभ पहुंचाया जा सके।

हमने अपने पिछले लेखोंमें यह बताया है कि बुद्धपूर्वकालमें अर्थात् वैदिक एवं उपनिषदोंके समयमें भारतीय संस्कृति विद्यमान् थी। इस युगमें जो संस्कृति थी वही वास्तवमें भारतीय संस्कृति थी। इस समय ज्ञान एवं श्रद्धाको सन्तुलित रखा गया था, अत आजकी तरह इस युगमें अन्धश्रद्धाके लिये कोई स्थान नहीं था। यह बात उक्त ग्रन्थोंसे विदित हो जाती है।

भजनसे तन्मयता

५ प्रश्न— भजनके द्वारा तन्मयता उत्पन्न होती है, क्योंकि यह बात अनुभवके द्वारा सिद्ध हो चुकी है। फिर आप भजनके लिये निषेध क्यों करते हैं?

उत्तर— हमने भजन द्वारा होनेवाली तन्मयताका निषेध कभी नहीं किया। यह सत्य है कि ऐसी तन्मयता होती है। भजन द्वारा सुज्ञ एवं अज्ञ दोनोंको एक स्थानपर लाया जा सकता है, यह इसकी एक बडी विशेषता है। तन्मयताका प्राप्त होना, एकतानताकी प्राप्ति, मनकी प्रसन्नता आदि सब सत्य है; किन्तु यह सब तभी सम्भव है जब यथोचित रूपसे भजन किया जाय। ऐसा करनेपर और भी बहुतसे लाभ सम्भव हैं। किन्तु इस प्रकारके लाभ वर्तमान प्रणालीसे सम्भव नहीं हैं।

भजनमें शब्दोंका उच्चारण करना वाणीका काम है, अर्थका मनन करना मनका कार्य है और अर्थका अनुष्ठान करना इन्द्रियसहित शरीरका काम है। इस प्रकारसे सर्वाङ्गीण अनुष्ठान होनेपर ही उसका वास्तविक लाभ मिल सकता है। आज तो केवल वाणीका ही कार्य अवशिष्ट रह गया है। अतः सिद्धि अंशतः मिलती है। परिणाम यह होता है कि भजन द्वारा समाज या राष्ट्रके विशाल क्षेत्रमें जो लाभ होना चाहिये वह नहीं होता। 'विष्णु सहस्रनाम' 'गणेश सहस्रनाम' आदिके विवरणमें इसका सविस्तर विचार किया गया है। पाठक इसे वहां देखें। हमारे कहनेका उद्देश्य यह है कि जनता सर्वाङ्गपूर्ण भजन करे।

केवल एकतानता सिद्ध कर लेनेसे मानवकी उन्नति नहीं हो जाती। मानवका पूर्ण विकास यदि अपेक्षित है तो उसमें मानवताकी दृष्टिसे सामर्थ्य उत्पन्न होना चाहिये। पुरुषका पुरुषोत्तम बनना चाहिये। इस ध्येयकी प्राप्तिके लिये सर्वाङ्गपूर्ण भजन करना चाहिये। भीष्मने युधिष्ठिरको विष्णु-सहस्रनाम स्तोत्रका फल बताते हुए यह कहा है कि इसके जप करनेसे ब्राह्मण ज्ञानी, क्षत्रिय विजयी, वैश्य धनसम्पन्न तथा शूद्र सुखी होता है। परतन्त्र स्वतन्त्र होता है। इन फलोंकी इसी जन्ममें प्राप्तिके लिये सर्वाङ्गपूर्ण भजन करना चाहिये। आज आंशिक भजन होता है; अतः काम भी आंशिक ही मिलता है। हम इसके द्वारा पूर्ण लाभ क्यों न कर लें?

साधुसंतोंने भजनकी परिपाटीको प्रोत्साहन दिया। किन्तु इन्होंने केवल शब्दोंका जप ही किया है। मनन एवं अनुष्ठानकी ओर उन्होंने भी ध्यान नहीं दिया। यदि उन्होंने इस ओर ध्यान दिया होता तो उसका परिणाम आज हमें दिखाई पडता। विष्णु-सहस्रनामका अध्ययन करनेपर हम अपनी त्रुटि जान सकते हैं। पाठक इसका विचार अवश्य करें। भजनकी पद्धति तो वैदिककालसे है—

नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात् पुरोषसः।
(अथर्व०)

'सूर्योदयसे पूर्व नामका जप किया जाता है' ऐसा वेद कहता है—

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम। (ऋग्वेद)

'किस देवका सुन्दर नाम हम उच्चारण करें' यह शुनःशेप कह रहा है। इसका यह आशय स्पष्ट है कि, 'अमर देवोंके नामका जप हमें करना चाहिये।' पूर्वकालमें नामोंका जप मननपूर्वक होता था। मन्त्रका अर्थ ही मनन है (मननात् मन्त्रः); अर्थात् मन्त्रका मनन आवश्यक है। मनन द्वारा जपकर्ताके सामने उन्नतिका कार्यक्रम स्वयमेव उपस्थित हो जाता है। अर्थात् उसकी सर्वाङ्गीण उन्नति हो जाती है। आज हममेंसे यह विचार विलुप्त हो गया है। आज यह धारणा बन गई है कि मन्त्र-जप केवल रटनेका काम है। वैदिक युगमें वह मननका विषय होनेके कारण तब और अबके परिणामोंमें आज इतना महान् अन्तर दिखाई दे रहा है।

मनोमूर्च्छना

६ प्रश्न— भजन द्वारा जो एकतानता होती है उसे आपने मूर्च्छा किस प्रकार माना है?

उत्तर— मूर्च्छा शब्दका प्रयोग करनेसे कोई हानि नहीं हुई है। मनका जागृत अवस्थाका व्यापार बन्द हो जानेपर जो स्थिति निर्माण होती है वही मूर्च्छा है। इस मूर्च्छाका उद्भव अनेक प्रकारसे सम्भव है। किसी भी पदार्थपर मनको लगातार एकाग्र कर देनेपर यह अवस्था प्राप्त हो सकती है, ध्वनिपर मनको एकाग्र करनेसे भी यह अवस्था प्राप्त होती है। औषधि प्रयोग द्वारा भी मनके व्यापार बंद किये जा सकते हैं; किन्तु यह प्रकार सबसे निम्न स्तरका है। चित्तकी एकाग्रतासे मनोव्यापार बंद

करना बहुत उच्चावस्थाका निदर्शक है। शब्दकी बडी गर्जना करके उसमें मन रमाना भी एक प्रणाली है, भजन द्वारा इसे सिद्ध किया जा सकता है। अत्यन्त सूक्ष्म ध्वनि-पर मनको लगाना दूसरा प्रकार है, श्वासके आवाजपर मन लगाना तीसरा उपाय है और अनाहत ध्वनिका अवलम्बन करना चौथा उपाय है, इस प्रकारके अनेक उपाय मनको स्तब्ध करनेके हैं। इन सभी उपायों द्वारा जाग्रतीमें कार्य करनेवाला मन स्तब्ध हो जाता है। मनका स्तब्ध होना ही मूर्छा है। मनको धक्का लगनेपर भी यह अवस्था प्राप्त होती है, किन्तु उस अवस्थामें घबराहट होनेके कारण इससे लाभके बदले हानि होती है।

नासाग्रदृष्टि या भूमध्यदृष्टि रखनेपर भी मनोमूर्च्छना हो जाती है। साधन मार्गमें कुछ अघोरपंथी निकले हैं। उन्होंने मद्य, भांग और गांजा आदिके प्रयोग द्वारा भी मूर्च्छा लानेका प्रयत्न किया है। तबसे इन लोगोंमें इन व्यसनोंका प्रचलन हुआ है। जाग्रत अवस्थाका मन इन मादक पदार्थों द्वारा मूर्च्छित हो जाता है; किन्तु ये पदार्थ सर्वतोपरि हानिकारक होनेके कारण किसीको भी इनका अवलम्बन न करना चाहिये। इनके द्वारा यद्यपि मन मूर्छित होता है तथापि इनका अवलम्बन करके कोई भी आजतक बहुत ऊंची योग्यता प्राप्त कर सका हो, ऐसा नहीं दीखता। औषधि उपायोंका भी अवलम्बन उचित नहीं है।

प्रथम किन्हीं अवलम्बनों द्वारा चित्तैकाग्र्य करना चाहिये और फिर इस अभ्यासको धीरे धीरे बढाना चाहिये। साथ ही यह समझ लेना चाहिये कि बुद्धि, मन, इन्द्रिय और शरीरमें आत्मा, बुद्धि व मनकी सचालक शक्ति है, मैं यहाँका अधिपति हूँ और मेरी इच्छाके अनुसार यहाँका कार्य होगा। इन भावोंको मनमें धारण करके हमें स्वयंका राज्य यहाँ चलाना है; और किसीका अधिकार यहाँ न चलेगा। इस प्रकार मनका दृढ निश्चय अपेक्षित है। इतना होनेपर मनको एकाग्र करनेकी इच्छा करे, तब कहीं वह धीरे धीरे स्तब्ध होने लगता है। ज्ञानके साथ मनको एकाग्र करनेका यह सरल उपाय है।

इन अनेक उपायोंसे मन स्तब्ध होजानेपर बुद्धि अपना कार्य करने लगती है। यह अवस्था देशकालातीत मानी जाती है। एक स्थानपर बैठकर दूरका दीखने लगता है अथवा समझने लगता है। यह सब मनकी स्तब्धावस्थामें ही होता है। इस स्थितिकी प्राप्ति होने या न होनेपर भी मनके स्तब्ध होनेपर उसकी शक्ति बढने लगती है। इस बढी हुई शक्तिका उपयोग विश्वसेवाके लिये होना चाहिये। मनोमूर्च्छना हो जानेपर जो यह समझते हैं कि मनोमूर्च्छना होजानेपर हम कृतकृत्य हो गये वे भूल करते हैं।

व्यायाम करके शरीर सुदृढ होजानेपर उसका उपयोग नगरकी रक्षाके लिये होना चाहिये। इसी प्रकार योगादि साधन द्वारा मनके स्थिर होनेपर तथा उसकी शक्ति बढ जानेपर उसे जनताजनार्दनकी सेवामें लगाना चाहिये। यह न करके साधक लोग अपनी ही तन्द्रामें निमग्न रहते हैं और इस प्रकार स्वयको कृतकृत्य मान लेते हैं। वास्तवमें यह भूल है। योगसाधन शरीर, इन्द्रिय, मन आदिकी शक्ति बढानेके साधन हैं। इसके द्वारा शक्ति वृद्धि होजानेपर क्या करना चाहिये, यह निश्चित है। इस निश्चित कार्यको जो न करेंगे उनकी अभिवृद्ध शक्तिका क्या उपयोग?

शक्तिका उपयोग

व्यायाम द्वारा मनुष्यने अपने शरीरको सशक्त बना लिया, किन्तु इस शक्तिका नगरकी या राष्ट्रकी रक्षाके लिये यदि उपयोग न किया तो उसकी यह अभिवृद्ध शक्ति व्यर्थ होगी।

इसी प्रकार मनके स्थिर होनेपर, उसकी चंचलता दूर होनेपर शक्तिका संचय हो जाता है, अतः इस शक्तिका उपयोग सघ, जाति एवं राष्ट्रके उपयोगके लिये होना ही चाहिये।

जिस प्रकार हाथ दीर्घ कालतक ऊपर रखकर सुखा लेनेपर वह निरुपयोगी बन जाता है उसी प्रकार मनका होता है। आजके साधक मनकी स्थिरता प्राप्त करते ही स्वयको कृतकृत्य मानने लगते हैं और फिर समाजकी दृष्टिसे वे सर्वथा अकर्मण्यसे हो जाते हैं। आज सर्वत्र यही दीख रहा है और यही भारी भूल है। एम. ए. होनेपर, वैद्य बननेपर यदि कोई घरमें ही केवल पडा रहे तो लोग जिस प्रकार उसे मूर्ख कहेंगे उसी प्रकार मन स्थैर्यकी सिद्धि होनेपर उसका उपयोग समाज और राष्ट्रके लिये न करने-वालेको भी कहा जाएगा। आज इसीका निदर्शन सर्वत्र हो रहा है, यह हम पूर्व भी कह चुके हैं।

भाषा मीमांसा

[लेखक— श्री. पं. शिवकुमार महेशदत्त शुक्ल, विद्याभूषण]

शिक्षावल्ली

शिक्षाशास्त्रमें स्वर और व्यंजनोंका निर्णय और उनकी गतिविधि उच्चारणादि नियमोंका स्पष्ट उल्लेख किया गया है।

तैत्तिरीय उपनिषद्में शिक्षोपनिषद्वल्ली शिक्षाध्यायमें—
ॐ शिक्षां व्याख्यास्यामः । वर्णः । स्वरः । मात्रा । बलम् । साम सन्तानः । इत्यादि

वर्ण– यहां वर्ण पदसे अकार आदि वर्णों (अक्षरों) का ही प्रथम विवेचन किया गया है, वस्तुतः कुल वर्ण ६४ होते हैं।

स्वरः= उदात्त अनुदात्त स्वरित भेदसे स्वरोंको जानना चाहिये, मात्राः= ह्रस्व दीर्घ और प्लुत इन उच्चारणोंका भेद काल-समयके नियमसे जानना चाहिये जैसे—

एकमात्रो भवेद्ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते ॥
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं चार्धमात्रकम् ॥

अ–आ–आ३–इनका क्रमसे ह्रस्व दीर्घ प्लुत और क् ख् ग् इत्यादिका अर्ध मात्रा उच्चारण काल होता है। क्+अ=क यह पूर्ण उच्चारण है।

वर्णोंके स्थान प्रयत्न

नह्यचं विना व्यंजनस्योच्चारणं सम्भवतीति भाष्यम् अर्थात् अच् स्वरोंकी मदद लिये बिना व्यंजनोंका पूर्ण उच्चारण होता ही नहीं है। जैसे स्वर युक्त व्यंजनका कि की कु कू के कै को कौ। इत्यादि होते हैं।

बलम्= बल शब्दसे वर्णोंके स्थान और प्रयत्न बतलाये गये।

अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा।
जिह्वामूलं च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च ॥
पा. शि. १३ श्लो

अ आ क ख ग घ ङ और विसर्ग
इनका कण्ठ स्थान है।

इ ई च छ ज झ ञ और य श
इनका तालु स्थान है।

ऋ ॠ ट ठ ड ढ ण और र ष
इनका मूर्धा स्थान है।

ऌ ॡ त थ द ध न और ल स
इनका दन्त्य स्थान है।

उ ऊ प फ ब भ म इनका ओष्ठ स्थान है।

ञ म ङ ण न और अनुस्वार
इनका नासिका स्थान होता है।

ए ऐ का कण्ठ और तालु स्थान है।

ओ औ का कण्ठ और ओष्ठ स्थान है।

व– का दन्त और ओष्ठस्थान होता है। कैयट और पाणिनी आचार्य दन्तके निकट होनेसे– 'दन्त्योष्ठ्यो व' ऐसा मानते हैं।

कात्यायन प्रातिशाख्यमें भी व का ओष्ठ ही स्थान है।

बल शब्दसे शिक्षामें प्रयत्न भी समझना चाहिये, वर्णोंके आभ्यन्तर और बाह्य दो प्रयत्न होते हैं, अर्थात् वर्णोंके उच्चारणमें भीतरसे और बाहरसे दो प्रकार बल लगाना पड़ता है तभी ठीक ठीक उच्चारण स्पष्ट होता है।

आभ्यन्तर प्रयत्नके पांच प्रकारके भेद होते हैं—

स्पृष्ट-ईषत्स्पृष्ट-विवृत्त-ईषद्विवृत और संवृत ये आभ्यन्तर प्रयत्न कहे जाते हैं। बाह्यप्रयत्न ११ प्रकारके होते हैं। १- विवार २- संवार ३- श्वास ४- नाद ५- घोष ६- अघोष ७- अल्पप्राण ८- महाप्राण ९- उदात्त १०- अनुदात्त ११- स्वरित ये बाह्य प्रयत्न हैं।

वर्णविभाग–उदाहरण इस प्रकारसे है— 'क' से 'म' तक अक्षरोंका आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट है। इन अक्षरोंके उच्चारण करनेमें कण्ठ आदि स्थानोंमें प्राणवायुके स्पर्शसे इनका उच्चारण होता है। य र ल व इनका ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न है और श ष स ह इनका ईषद्विवृत प्रयत्न है। स्वरोंके यथास्थान विवृत और संवृत प्रयत्न होते हैं। इन विषयोंका पूरा ज्ञान प्राप्त करनेके लिये व्याकरण देखना चाहिये।

वर्णोंकी उच्चारण पद्धतिपर प्रयत्नोंके द्वारा गम्भीर गवेषणा की गई है, जैसे बाह्य प्रयत्नोंमें प्रत्येक वर्णके चार चार प्रयत्न होते हैं। 'क' अक्षरके विवार, श्वास, अघोष और अल्पप्राण ये चार प्रयत्न हो जाते हैं। यहांतक वर्णोंके उच्चारण भेद और प्रयत्न बताये गये हैं।

शुद्ध उच्चारण

शिक्षामें साम आता है। साम = उच्चारणसाम्यता, वर्णोंका उच्चारण साम्यतापूर्वक मधुरतासे होना चाहिये। प्रायः देखा गया है कि शुद्ध और स्पष्ट वर्णोच्चारणका विचार जितना सुन्दर संस्कृत-हिन्दीका है, उतना अन्य किसीका नहीं है, इस विषयका पूरा विवरण पाणिनीय शिक्षामें मिलता है; जैसे-

'माधुर्यमक्षरव्यक्तिः' 'व्याघ्री यथा हरेत्पुत्रं' प्रातः पठेदित्यादि द्वारा वर्णोंका यथास्थान स्पष्ट उच्चारण करना चाहिये, जैसे दांतोंके सहारेसे व्याघ्री अपने बच्चोंको ले जाती है परन्तु बच्चोंको कुछ भी पीडा नहीं होती है, तद्वत् उच्चारणमें मधुरता होनी चाहिये। वर्णोच्चारणके दोषोंका भी निरूपण किया है।

गीती शीघ्री शिरः कम्पी तथा लिखितपाठकः।
अनर्थज्ञोऽल्प कण्ठश्च षडेते पाठकाऽधमाः॥

लिख लिखकर पाठ करना, अति शीघ्रतासे, अति विलम्बसे, गा गा करके, सिर हिलाकर, अस्पष्ट, वर्णोंको खाजाना आदि।

सन्तान, सन्धि, स्वर, व्यंजन, विसर्ग अथवा अनुस्वार इत्यादि वर्ण परवर्ती वर्णोंके साथ कहीं कहींपर नूतनरूप धारण कर लेते हैं, इस प्रकारसे वर्णोंका संयोगजनित जो विकृतिभाव उसे सन्धि कहते हैं जैसे- देव+ईश=देवेश। गंगा+उदकम्=गंगोदकम्। रमा+ईशः =रमेशः। सत्+चरित्र = सच्चरित्र। सत् + जनः = सज्जन। तत् + मय = तन्मय। चित्+मय=चिन्मय। इत्यादि ऐसे स्थलोंमें संधि करके ही बोलना उचित होता है।

किसी स्थल विशेषमें संधि बाधित भी होती है, जैसे इति कृष्ण३ = अत्र गौश्चरति यहाँ दीर्घ नहीं होता। और भी उदाहरण है जैसे- हरी एतौ। विष्णू इमौ गङ्गे अमू। जहाँ वर्ण विकार नहीं होता उसे प्रकृतिभाव कहते हैं। तात्पर्य्य यह है कि वर्णोंके उच्चारणमें बहुत सावधान रहना चाहिये, नियमोंका पालन करना चाहिये। यहाँतक वर्णोच्चारणके नियमोंका विवेचन किया गया है। ये नियम शिक्षाग्रंथोंमें अनेकों हैं।

उच्चारणका विवेचन भारतके ऋषि मुनियोंने बडी गम्भीरतासे किया है, यह आवश्यक है भी, नहीं तो अर्थ का अनर्थ भी हो जाता है, वैदिक साहित्यमें तो वर्ण वर्णपर उच्चारणमें उदात्तादि स्वरोंका ध्यान रखना पडता है, कहाँ कौन स्वर है? इसका यथार्थ ज्ञान न रहनेसे अशुद्ध स्वरोंसे अनर्थ होता है और बोलनेवाला दोषका भागी हो जाता है, ह्रस्व-दीर्घका भी ठीक प्रयोग होना चाहिये- सिता=सफेद सीता = जानकी। पतञ्जलिमहर्षिने महाभाष्यमें कहा है-

दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो
न तमर्थमाह॥ स वाग्वज्रो यजमानं हिन-
स्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥

अर्थात् - स्वर या व्यंजन वर्णमात्रकी अशुद्धिसे दूषित होनेके कारण अभीष्ट अर्थका वाचक नहीं होता है। वह मिथ्याप्रयुक्त वचन वज्रके समान श्रोताको, यजमानको भारी हानि पहुँचाता है। जैसे वेदमें आता है कि- 'इन्द्र शत्रु' इस शब्दमें स्वरकी अशुद्धि हो जानेसे वृत्रासुर स्वयं ही इन्द्रके हाथसे मारा गया।

'इन्द्रशत्रुर्वर्धस्व' (तै. सं. २।४।१२।१) इस मन्त्रमें इन्द्रस्य शत्रुः अर्थात् इन्द्रका विघातक (नाश करनेवाला) जो वृत्रासुर ऐसी अर्थ योजना होनेसे अन्तोदात्त स्वर हो जाता है, वृत्रासुरकी वृद्धि हो, ऐसा अर्थ हो जाता है। इन्द्रः शत्रुर्घातको यस्य इस बहुव्रीहि समाससे आदि उदात्त अर्थात् इन्द्र शत्रु है जिसका ऐसा जो वृत्रासुर उसके शत्रु इन्द्रकी वृद्धि हो, ऐसा अर्थ हो जानेसे वृत्रासुरका वध इन्द्रने किया। स्वरव्यवस्थाका ठीक ठीक ज्ञान हो तभी अपने इच्छित अर्थकी सिद्धि हो सकेगी। इन्द्र शब्दका सूर्य और उसका शत्रु मेघ उसे आच्छादित करनेवाला इत्यादि भी होता है। आदि अन्त उदात्तका ज्ञान होनेपर ही उपयुक्त प्रयोगोंसे अभीष्ट सिद्धि हो सकती है, यह भाव है।

दन्त्य 'स' के स्थानमें तालव्य 'श' या मूर्धन्य 'ष' तथा 'व' के स्थानमें 'ब' उच्चारण नहीं होना चाहिये।

**यद्यपि बहुनाधीते तथापि पठ पुत्र व्याकरणम् ।
स्वजनः श्वजनो माभूत् सकलं शकलं सकृच्छकृत् ॥**

अर्थात् -- हे पुत्र तुम कमसे कम व्याकरण तो अवश्य ही पढो, जिससे स्वजन = कुटुम्बी; श्वजन = कुत्ता, सकल= सम्पूर्ण या सब, शकल = खंड या टुकडा, सकृत् = एक वार, शकृत् = विष्ठा, इत्यादि उच्चारणोंका तुमको ज्ञान होवे, श स के विपरीत उच्चारणसे कितना अनर्थ होता है; अतः बिना व्याकरणके वाणी शुद्ध नहीं होती है ।

वर्णात्मक ध्वन्यात्मक शब्द

संस्कृत वर्णोंसे जो भी शब्द बनते हैं, उन शब्दोंके अर्थ जो भी जहाँपर प्रयुक्त होते हैं उनका मूल अक्षरोंके अर्थोंसे सम्बन्ध रहता है, इन्हीं अक्षरोंसे धातु बनते हैं, प्रकृति प्रत्ययोंके योगसे क्रिया तथा शब्द बनते हैं। योगशास्त्र ३।१७ में महर्षि पतंजलि मुनि कहते हैं-

शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात् संकरस्तत्प्रविभागसंयमात्सर्वभूतरुतज्ञानम् ।

तात्पर्य यह है कि शब्द- अर्थ- बोधोंके संयोग और विभागमें संयम करनेसे संसारके सब प्राणियोंकी भाषायें ज्ञात हो जाती हैं। अर्थात् जितना भी शब्द समुदाय है वह ध्वनि रूपसे ६४ वर्णोंके ही अन्तर्गत होता है ॥

अतः पतंजलि शास्त्रके अनुसार संसारकी भाषा एक ही है और वही मूल भाषा संस्कृत है ।

विश्वकी मूलभाषा संस्कृत

अक्षर-विज्ञानसे धातु प्रत्यय प्रत्ययान्त पदोंका मतलब ठीक ठीक जाना जाता है । उसी अर्थमें शब्दका प्रयोग हो जाना, यह खूबी संसारके किसी भी व्याकरणमें नहीं है । संस्कृत व्याकरणमें यह खूबी है कि वर्णका अर्थ, धातुका अर्थ तथा प्रत्ययसे निष्पन्न शब्दका अर्थ उसीमें ग्रथित रहता है । एकाक्षरी कोषमें धातु-प्रत्यय विज्ञानसे संस्कृत शब्द भण्डार सुविस्तृत है । यह और भी विस्तृत किया जा सकता है ।

वैदिक भाषाकी तीन शाखायें

पीछे बताया गया है कि ऋषियोंने वेदभाषासे संस्कृत भाषा विस्तृत की, उसी संस्कृत भाषासे समस्त भाषाएं उत्पन्न होती चली गईं, कई भाषाओंने कुछ न कुछ अंशमें मूल व्याकरणके नियमोंका पालन किया, लेकिन अपभ्रंशता चालूही रक्खी। देशकालके भेदसे परिवर्तन भी क्रमसे होताही गया, तो भी ऐसी भाषाओंको आधुनिक इतिहासकार आर्य भाषाका ही नाम देते गये। इस प्रकार मुख्य मुख्य भाषाओंके विभाग अनेक शाखाओंमें विभक्त हो गये ।

वैदिक भाषाकी तीन मुख्य उपशाखायें

१- आर्य भाषा- जेन्द, प्राकृत, पाली, ग्रीक, लेटिन, अंग्रेजी इत्यादि । भारतसे ईरान, युरोप, अमेरिका तक फैली हुई भाषायें ।

२- हामी- (क) सामी- (ख) काप्टी, कुशी, खमीर, गल्ल, नामा, लिबि, बर्बर, मिश्री, सोमाली, हव, कनूरी, हातसा, नूबी, फ्यूल, मोम, बाई, वोलोफ, सेनेगल, होटेन्टाट, इत्यादि ।

ख- अकदी, अरबी, अरमी, गीज, फीनीशी, यहूदी, सीरी, हब्शी इत्यादि ।

३- तुरानी भाषा— द्रविड भाषा (क) (तामील, तूलु, मलयालम, कन्नड, तेलुगु, मावरी, स्वाहिली इत्यादि) मद्रासले आस्ट्रेलिया और आफ्रिका तक फैली हुई भाषायें।

(ख) चीनी, जापानी, तातारी, फीनी, उग्री, मंगोलीयन, मंछू, तुर्की इत्यादि। चीन, जापानसे लेकर हंग्री, फिनलैंड, एस्कीमो, उत्तर ध्रुवादि तक फैली हुई भाषायें ।

इन्हीं तीन प्रकारोंसे संसारमें भाषाओंकी भरमार होती गई और मूल वैदिक भाषाके जानकारोंकी संख्या उतनी ही न्यूनतम होती चली गई ।

इस एक ही भाषाकी इस समय संसारमें तीन शाखायें पाई जाती हैं। इन तीनोंको आर्य, सेमेटिक और तुरानी विभागोंमें विभक्त किया गया है। परन्तु प्रो० मेक्समूलर कहते हैं, कि ' आर्य और सेमेटिक दोनों एक ही मूल भाषाकी दो धारायें हैं। टेलर महोदय कहते हैं कि ' अब-तक दोनों शाखाओंके अनेकों शब्द एक ही रूपके मिलते हैं। इसी तरह तुरानी शाखाके विषयमें भी विद्वानोंका यही मत है। तुरानी शाखा, समस्त मंगोलियन और इथियोपिक (निग्रो) जातियोंमें बोली जाती है। इसका फैलाव

मद्रासकी द्रविड भाषाओंसे लेकर आस्ट्रेलियाकी भाषाओं-तक है। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिकामें लिखा है कि 'अनेकों शब्द मद्रास और आस्ट्रेलियामें एक ही रूपके बोले जाते हैं। मद्रास प्रान्तकी तेलगू आदि भाषाओंके लिये केम्बेलसने और रायल एशियाटिक सोसायटीसे प्रकाशित होनेवाले जनरलके सम्पादकोंने लिखा है कि 'ये भाषायें भी वेद भाषासे ही निकली हैं। इनके सैंकडों शब्द अबतक एक ही समान पाये जाते हैं। इस तरहसे समस्त आर्य, सेमेटिक और तुरानी भाषायें एक ही भाषासे निकली हुई सिद्ध होती हैं। निम्नांकित उदहरणोंसे यह ज्ञात हो जाएगा कि संसारकी समस्त भाषाओंमें एक ही भाषा ओतप्रोत भरी हुई है और एक ही शब्द आर्य, सेमेटिक और तुरानी भाषाओंमें एक ही रूप और अर्थके साथ प्रस्तुत है—

आर्य	सेमिटिक	तुरानी	अर्थ
संस्कृत-अम्ब	सिरियन-आमो	द्राविडी-अम्मा	माता
	सामोपेडिक-अम्म	सिथियन-अम्माक, अम्मेद	
	अरबी-उम्म	मलयाली-अम	
		तुलू-अप्पा	
		चीना-मा	
संस्कृत-मेरु	मिश्री-मेरई	तुर्की—मेरुस	हिमालय का मेरु प्रदेश
जन्द -मौरु			
ग्रीक -मेरोस			
संस्कृत-द्यौः	अरबी-योः	चीना—तौः	सूर्य और सूर्य लोक
अंग्रेजी-डे		जापानी-दे	
		तिलगू-दिवसु	
संस्कृत-ईरा			पृथिवी
ग्रीक (Era) एरा	हिब्रू-एरेछ्		
लेटिन (Tera) तेरा	अर्बी-अर्ज, जेरत		
जरमन (Erda) एर्दे			
प्रा. इंगलिश (Earthe) इयर्थी			
न, इंगलिश (Earth) अर्थ			

इन तीनों शाखाओंका व्याकरण भी एक ही है। आर्य और सेमेटिक भाषाओंमें लिङ्ग और वचन तीन तीन हैं। जिस प्रकार संस्कृत जेन्द और लेटिन आदि प्राचीन भाषा-ओंमें लिङ्ग और वचन तीन तीन हैं, उसी तरह सेमेटिक भाषा अरबी और हिब्रूमें भी लिङ्ग और वचन तीन तीन हैं। सेमेटिक और आर्य भाषाओंकी ही भाँति आर्य और तुरानी व्याकरणमें भी समानता मिलती है। इस भाषामें संस्कृतकी भांति तीन वचन और आठ विभक्तियाँ हैं। इस प्रकारसे व्याकरणके ये स्थूल नियम अबतक तीनों विभागोंमें एक समान ही पाये जाते हैं, जो तीनोंकी ऐक्यताका सबल प्रमाण हैं।

संस्कृतका अपभ्रंश जेन्द-फारसी भाषायें

फारसीमें भी अलिफ और ऐन, जीम, जाल, जे, झे, ज्वाद, और जो, सीन, शीन, स्वाद, से, इत्यादि उच्चारण एक ही ध्वनिके बोधक हैं, इन्हें हटाने पर तो बहुत ही कम उच्चारण शेष बच जायेंगे। क्लिष्टताके भयसे इन भाषाओंने संकीर्णता करके अपभ्रंश शब्दोंकी भरमार कर दी है। फारसी शब्दोंकी जिसमें अधिकता हो ऐसी भाषाका नाम उर्दू भाषा है।

नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं, इनसे स्पष्ट हो जाता है कि, फारसी तो स्वयं ही संस्कृत भाषाका अपभ्रंश रूप है, इससे साफ प्रकट है कि फारसी संस्कृतकी पौत्री या प्रपौत्री है।

फारसी भाषाके पूर्व जेन्दभाषा हुई है, जेन्दमें भी संस्कृत भाषाके अपभ्रंश शब्द बहुतसे आते हैं। (छन्द) के पुराने गाथा और जन्दावस्थाको देखनेसे प्रतीत होता है- अथ, चित्, मत्तं, क्षत्रेभ, चा, ददात्, नमस्ते, परो, इत्यादि शब्द संस्कृतसे ही मिलते हैं। जेंद और प्राकृत भाषा एवं पश्तो और फारसी आदि भाषायें उसी प्रकारकी भाषायें हैं जैसे भारतके विभिन्न प्रान्तोंकी प्रान्तीय भाषायें हैं- बंगाली, मराठी, गुजराती, मागधी, सिन्धी इत्यादि प्रान्त थे।

फारसी भाषाको संस्कृतका ही बिगडारूप देखनेके पूर्व जेन्दको देखनेसे फारसीका प्रकार विदित हो जाता है, पश्तो इन भाषाओंका अन्तिम अपभ्रंश रूप है। जेन्द और फारसीके संस्कृत भाषामेंसे कैसे तोड मरोड कर विकृत रूप किये गये उनका नमूना यहां दिखाया जाता है।

जेन्दावस्था पारसियोंके प्राचीन साहित्यका नाम है, जिसका मूल अथर्ववेद है। जेन्द भाषाको वेद भाषाकी समकालीन भाषा कहनेवाले भारी भूल करते हैं। संस्कृत-भाषाका बिगडा हुआ अपभ्रंश रूप ही इसे कहना चाहिये।

जेन्दावस्थामें विज़ंग्राचथ्वारे ज़ंग्रा आदि पद द्विके स्थानमें वि, जंघाके स्थानपर ज़ंग्रा, चत्वारिका चथ्वारे बननेमें बहुत समय लगा होगा, वेदकी तो बात दूर रही। संस्कृत भाषासे भी बहुत ही पीछे यह भाषा हुई है, इतना ज्यादा अप-भ्रंश काल अपेक्षित है।

जेन्द भाषाका एक पूरा श्लोक देखिये—

यथा अहु वइर्यो अथा रतुश अशात् चित्
हचा वंहे उश दज़दा मनं हो श्क्यो थ्रिनम् अंहे
उश मज़दा ख्यथ्रेमचा आहुराई आइम द्रिगु-
व्यो ददात् वास्तरेम नमसेते अहुरा मजदा
थ्री श्री परो अन्याहश दामं ॥

इस श्लोकमें- यथा, अथ, चित, मनं, क्षेत्रेम, चा, ददात, नमसेते = नमस्ते - इत्यादि शब्द संस्कृतसे मिलते जुलते हैं। इसी प्रकार 'नेमसेते अहुर मजद' नेमसेते- यह नम-सेतेको और भी ज्यादा 'पाक खोर देह अवस्था' में कर दिया है। नमसेते, नेमसेते ये नमस्तेके ही भ्रष्टरूप होते जा रहे हैं। और भी आगे क्या क्या परिवर्तन होंगे कौन जानता है। भाषा परिवर्तन सरलताके ही ख्यालसे होते रहते हैं।

संस्कृत और जेन्द भाषाकी साम्यता

संस्कृत स जेन्दमें ह हो गया है।

संस्कृत	जेंद	अर्थ
※ असुर	अहुर	परमेश्वर
× सोम	होम	वनस्पति
सप्त	हप्त	सात
सेना	हेना	फौज

संस्कृत ह जेंदमें ज हो गया है।

हस्त	जस्त	हाथ
होता	जोता	आहुति डालनेवाला
आहुति	आजुति	आहुति
बाहु	बाजु	हाथ
अहि	अजि	सर्प

संस्कृत श्व जेंदमें स्प हो गया है।

विश्व	विस्प	सब (संसार)
अश्व	अस्प	घोडा

संस्कृत श्व या स्व जेंदमें क हो गया है।

श्वसुर	कुसुर	ससुर
स्वप्न	कप्न	सपना

संस्कृत त जेंदमें थ हो गया है।

मित्र	मिथ्र	सूर्य (दोस्त)
मन्त्र	मन्थ्र	श्लोक

संस्कृत भ जेंदमें फ हो गया है और ध ज हो गया है।

गृभ	ग्रिफ्त	पकडना
गोमेध	गोमेज	खेती करना

ज्योंके त्यों शब्द इस प्रकार है।

पशु	पशु	पशु
गो	गाव	गाय
उक्षन्	उक्षन्	बैल
यव	यव	जौ
वैद्य	वैद्य	वैद्य
वायु	वायु	हवा
इषु	इषु	बाण
रथ	रथ	गाडी
गन्धर्व	गन्धर्व	गानेवाले
अथर्वन	अथर्वन	यज्ञऋषि
गाथा	गाथा	पवित्र पुस्तक
इष्टि	इष्टि	यज्ञ
छन्द	जन्द	छंदस ज्ञान अथर्ववेद

※ असु प्राणने इस धातुसे असुषु = प्राणेषु रमते इस अर्थमें संस्कृत असुर शब्दका अर्थ राक्षस होता है।

× सोम एक लता है जिसका रस यज्ञोंमें काम आता है और आर्य लोग पीते भी हैं। पर जेन्द भाषामें इसका वैदिक अर्थ वनस्पति ही किया गया है।

संस्कृत और फारसी					
संस्कृत	फारसी	अर्थ	अंगुष्ठ	अंगुश्त	ऊँगली
जानु	ज़ानु	घुटना	हस्त	दस्त	हाथ
			(जेंदमें जस्त था, इसमें दस्त हुआ है।)		
बाहु	बाजू	हाथ	पुरोहित	फरिश्ता	दूत +
(हकारका जकार हो जाता है।)					
जिह्वा	ज़बां	जीभ	सहस्र	हजार	हजार *
(जेंदमें हिज्वा होकर यहाँ जबाँ हुआ है।)			नम	नमाज	नमस्कार ×

\+ ॐ अग्निमीळे पुरोहितं, ' अग्निदूत पुरोदधे ' अग्नि वायुका दूत है। वही सब हव्य-कव्य पहुंचाता है। उसीको पारसी धर्ममें ' फेरेशिता ' कहा गया है। मुसलमान भी फरिश्ताको आतिशी अर्थात् आग्नेय मानते हैं।

* स का ह और ह का ज होनेसे जेन्दमें ह ज ह हुआ था, पीछे हजार हो गया।

× विसर्गकी आवाज हकार है और हकार जकार हो जाता है। इसलिये जेंदमें नमज हुआ और फारसीमें नमाज हो गया।

आत्म–आह्वान

(रूहोंको बुलाना असम्भव है !)

लेखक– श्री गणपतराव बा. गोरे, ३७३ मंगळवार, 'बी', कोल्हापूर

विषय-प्रवेश– जनवरी १९५४ के वैदिक धर्ममें ' मृत पुरुषोंकी मरणोत्तर दर्शन आदि क्रियाएं ' लेखमें बताया गया था कि अरबी भाषाके कोशोंमें भी यौगिक सिद्धि परकाया प्रवेशके पर्याय ' खल्अ ' वा ' अमल सीमिया ' उपलब्ध होते हैं ।

यह सिद्धि वर्षोंकी तपस्याके बाद केवल योगियोंको वा सूक्ष्म शरीरस्थ आत्माओंको प्राप्त हुआ करती थी । आज प्रत्येक पदार्थसे आर्थिक लाभ उठाए जानेका युग है, अतः युरोपके चतुर लोगोंने परकाया-प्रवेशसे भी लाभ उठानेकी ठानी । इन्हें स्वयं तो अपना शरीर छोडकर दूसरेके शरीरमें घुसनेकी सिद्धि प्राप्त न थी । अतः उन्होंने ढोंग रचा कि हम किसी भी दिवंगत [सूर्य प्राप्त=मरे हुए] पुरुषकी आत्माको सूर्यलोक आकाशादि जहां कहीं भी वह हो वहांसे माध्यम=MEDIUM द्वारा पुनः इस लोकमें बुला सकते हैं और उनके द्वारा गुप्त बातोंपर प्रकाश डलवा सकते हैं । उनके संबन्धी भी उनके संदेश ले सकते और उनसे रहस्यमयी बातें पूछ सकते हैं ।

इस विज्ञापनने एक साथ ही जो ईश्वररूपी पडदा जीवितों और मृतकोंके बीच उपस्थित रहता था उसे हटा दिया और इनके परस्पर व्यवहारको पुनः आरंभ करा देनेका आश्वासन दिया, बडी सुविधा हो गयी । अब जो धनाढ्य बिना संपत्तिका बंटवारा किए मर गए, जो रेल मोटरादिके नीचे आकर वा मूर्च्छित होकर अकस्मात् बिछुड गये, जो युद्धादिमें मारे गए ऐसोंके सम्बन्धी उनकी अतिम इच्छा जाननेके लिये लालायित हुए– और चतुर लोगोंके लिए कमाई और प्रतिष्ठाके मार्ग खुल गये । नास्तिकता एक नये रूपमें प्रकट होने लगी । ईश्वरको मानना आवश्यक न रहा ।

इन चतुर लोगोंमें कुछेक मनोवैज्ञानिक, नींद वा बेहोशी लानेवाले (Hypnotists and Mesmerists) भी थे, इसलिए युरोपादिके अनीश्वरवादी लोगोंने इस नयी खोजका हार्दिक स्वागत किया । कई विद्वान भी इनकी चालाकियोंमें जा फंसे और अन्तमें इन्होंने ही इनके मिथ्याचारका भांडा फोड दिया । आज इसी विषयपर लिखना चाहता हूं ।

१— घोषणाओंके नमूने– यूरोप अमेरिकाके चतुर लोगोंने निम्न प्रकारकी घोषणाएं कीं–

१. हम मृतकोंकी आत्माओंको माध्यम द्वारा बुलाते हैं; और उनसे संभाषण करते कराते हैं ।

२. उन्हें प्रत्यक्ष देखते, उनसे स्वयं वार्तालाप करते हैं, और अन्योंको करवाते हैं ।

३. उनके फोटो=छायाचित्र लेते हैं ।

४. भूत, वर्तमान, भविष्यत्के रहस्योंपर उनके अभिप्राय दिलवाते और गुप्त धनादिका पता लगवाते हैं ।

५. उनके द्वारा दिवंगत संबिधियोंका समाचार जो चाहें उन्हें दिलाते हैं । इत्यादि ।

धीरे धीरे यह नास्तिकता भारतमें भी पसर रही है, और यहांके चतुर लोग इसे भारतीय आचारविचारके सांचेमें ढाल रहे हैं । उदाहरणार्थ–

१. जहां यूरोपादिमें इसे Performance खेल वा तमाशा कहा जाता है; वहां उत्तर भारतमें इसे ' रूहोंको बुलाना ' और दक्षिण भारतमें ' परलोक विद्या संशोधन ' नाम मिला । इन दोनों नामोंसे ऐसा झलकता है कि वेदादि शास्त्र प्रतिपादित जो बारबार मरकर जन्म लेनेका सिद्धान्त है; सो असत्य है । सत्य यह है कि मरनेके बाद आत्माएं किसी स्थान विशेषमें जा बैठती हैं और माध्यम द्वारा बुलाए जानेपर झट आकर उपस्थित होती हैं, और प्रश्नोंका उत्तर देकर पुनः लौट जाती हैं । यही इनका ' संशोधन ' है ।

२. दिवंगत आत्माओंके फोटो लेनेकी कठिनाई जत-लानेके लिए ये संशोधक लिखते हैं कि एक सहस्रसे अधिक

कांचे टूटीं और सतत १५ वर्ष प्रयोग करनेके बाद स्पष्ट फोटो आने लगे ! इस झूठका भांडा किसी दूसरे लेखमें फोडा जायगा।

३ भूतों प्रेतोंसे भयभीत रहनेवाली हिंदू मुस्लिम जनताको बताया जा रहा है कि इन्होंने भूत बाधा नष्ट करनेके सैंकडों यशस्वी प्रयोग किए हैं। स्त्रियोंको एक रोग होता है जिसमें पागलपनके लक्षण दीखते हैं। इसे आंग्ल भाषामें Hysteria, और यूनानी चिकित्सामें आसेब-खलल्= भूतबाधा ही नाम है- कारण इसमें रोगीको दीवानगी= उन्मत्तपनेके झटके= Fits आते हैं। तब लोग समझते हैं कि इसमें भूत घुसा है। फारसी भाषामें 'आसेब' नाम भूतप्रेत, बदरूह= Evil spirit का है।

यदि परलोक विद्या संशोधकोंने इस हिस्टेरिया=भूतबाधाको दिवंगत आत्माओं द्वारा नष्ट करनेकी नवीन युक्ति शोध निकाली है, तो उन्हें भारत सरकार द्वारा इसका परीक्षण करवाकर पेटंट Patent करा लेनी चाहिये वा लोक कल्याणके निमित्त इसके शिक्षणका प्रबन्ध करा लेना चाहिए।

४ इन संशोधकोंका कथन है कि दिवंगत ज्ञानी डाक्टरों-वैद्योंके परामर्शसे हमारे वैद्य माध्यमोंने असाध्य रोगोंको भी हटा दिया है ! बडी हर्षकी बात है। यदि आपकी प्रतिज्ञाएं सत्य हैं, तो ऐसी बातोंको भारत सरकारतक पहुंचाकर उनके द्वारा एक परलोक विद्या संशोधन कालेज खुलवा लेना चाहिए। जनता आपका साथ देगी। भारतीय संशोधक पुनर्जन्मको मानते हैं। क्या ही अच्छा हो यदि ये लोग अपने वैद्य-माध्यमों द्वारा दिवंगत डाक्टरों और वैद्योंको पुनर्जन्म लेनेकी प्रेरणा करें ! यह कार्य पहले तो असंभव है, और यदि हो जाय तो संशोधकोंका मान-प्रतिष्ठा जाती रहेगी। अतः वे यह कार्य कभी न करेंगे।

२-- मृतकोंका सन्मान

मृतकोंका सन्मान सर्वत्र होता है। मरनेके बाद सभ्य जातियां मृतकोंके अवगुण भूल जाती हैं और गुणगान ही करती हैं। आंग्ल भाषामें कहावत है- Don't talk ill of the dead मृतकोंकी निन्दा मत कर। One who has died has paid all his debts जो मरा है उसने अपना सब कर्ज उतार दिया है। भारतमें लाखों पीरोंकी कबरें और साधुओंकी समाधियां प्रत्यक्ष प्रमाण हैं इस बातका कि अत्यन्त साधारण कोटिके लोग भी मरनेके बाद पूजे जाते हैं, फिर महात्माओंकी तो बात ही क्या। यूनानमें (यवन देशमें) ई० सनसे ८५० वर्ष पूर्व होमर= Homer नामक प्रख्यात कवि हो चुका है। जीतेजी वह भिक्षा मांगकर निर्वाह करता रहा, परन्तु मरनेके बाद सात बडे नगरवासी उसे अपनानेका दावा करने लगे ! इस-पर आंग्ल कविने लिखा—

Seven great cities contend for Homer dead through which the living Homer begged his bread.

मृतकोंके सन्मानकी प्रवृत्तिके साथ ही मनुष्योंमें एक भ्रम भी छाया हुआ है और वह यह है कि मरनेके पश्चात् आत्माएं अलौकिक शक्ति प्राप्त कर लेती हैं। जनवरीके वैदिक धर्ममें लेखकने भी स्वप्नमें आने, मरणोत्तर दर्शन देने, और मरकर बदला चुकानेके दृष्टान्त दिए थे। ये शरीरस्थ आत्माओंके लिए तो कठिन कार्य हैं, परन्तु सूक्ष्म शरीरधारीके लिए साधारण हैं। अतः इन्हें वास्तविक अर्थोंमें 'अलौकिक' नहीं कहा जा सकता। परन्तु इस सूक्ष्म विचारकी बातको साधारण जनता समझ नहीं सकती, अतएव मनुष्य जीवितोंकी अपेक्षा मृतकोंको अधिक शक्ति-शाली समझते हैं, उनके श्राद्ध करते हैं, उनसे डरते, और उनसे सहायताकी याचनाएं करते हैं, एक बन्धे हुए और निबन्ध मनुष्यकी कार्य क्षमतामें जो अंतर है, वही स्थूल और सूक्ष्म शरीरधारियोंकी कार्यक्षमतामें है।

३-- मृतकोंकी आडमें शिकार

चतुर लोगोंने इस भ्रमसे लाभ उठानेके लिए ही रुहोंको बुलानेका ढोंग ढूंढ निकाला, बडे बडे नगरोंमें टिकट लगाकर रुहोंको बुलानेका दावा करते हैं। सहस्रों वर्ष पूर्वके मृतकोंसे लेकर हिटलर, दयानन्द आदि सभी मरे हुओंकी आत्माओंको न जाने कहां कहांसे ढूंढकर ये लोग बुला लानेकी प्रतिज्ञा करते हैं। परन्तु जो एक मिनिट पूर्व मर गया है, उसकी आत्माको ये पकड नहीं सकते और न मरने-वाली आत्माको कुछ काल अधिक ठहरा सकते हैं। कोर्टोंमें मृत पुरुषोंकी साक्षि कभी कभी बडी आवश्यक हो जाती है। न्यायाधीशोंके सम्मुख उनतक पहुंच नहीं सकते। यदि

रूहोंको बुलानेकी दावेदारी सत्य होती तो संसारका कोई एक राज्य तो इससे अवश्य लाभान्वित होता परन्तु कोई नहीं हुआ, और न होगा !

४– रूहोंके संदेश लेनेके पाश्चात्य साधन

माध्यमों द्वारा मृतक आत्माएं आकर उपस्थित होती हैं, परन्तु बोलती नहीं ! जो सन्देश वे देती हैं वह निम्न ६ प्रकारके साधनोंमेंसे किसी एक द्वारा होता है ।

१. प्लेन्चिट, २. स्वयं प्रेरित = Automafic लेख, ३. मेजका हिलना = Table tilting, ४. उज्ज्वल स्वप्न, ५ परिचित ज्ञान = Telepathy, ६ भूत प्रेत = Ghost

क्यों बोलती नहीं ? आती ही नहीं तो बोले कौन ! फिर बोले तो स्वरसे पहचानी जाय कि यह अमुक पुरुषका है वा नहीं। बच्चों, स्त्रियों और पुरुषोंके बोलनेका ढंग निराला रहता है । इसलिये चतुर लोगोंने उत्तर दिलानेके उपरोक्त ६ नमूने स्वाधीन रखे हैं । जो ढंग इनमें अनुकूल होता है, उसीके द्वारा उत्तर दिलाते हैं ।

एक विचित्रता और देखिए । यदि एक अंग्रेज दयानंदकी आत्माको बुलायेगा तो ऋषि दयानंदकी आत्मा अंग्रेजीमें लिखा उत्तर देगी, जिसे वह जीवित अवस्थामें जानती भी न थी ! इससे सिद्ध होता है कि आत्माएं नहीं आतीं । उनको बुलानेका दिखलावा होता है ।

५– साधनोंकी परीक्षा

पहली परीक्षा – प्लेंचिट उत्तर नहीं देता !

प्रश्न— क्या प्लेन्चिट = Planchet* द्वारा दिवंगत आत्माएं उत्तर देती हैं ?

उत्तर— यदि प्लैन्चिटके लेख मृतकोंकी प्रेरणाके परिणाम होते तो बिना किसी जीवित पुरुषके प्लैन्चिटपर हाथ रखनेके वह स्वयं इन रूहोंकी प्रेरणासे गतिमें आकर उत्तर लिख दिया करता । परन्तु देखा यह जाता है कि जबतक उसपर हाथ न रखे जाएं तबतक वह गति–शून्य ही बना रहता है......

इंग्लंडके एक विद्वान 'हेनस' ने लिखा है कि उसकी नातेदार एक स्त्रीकी कन्याकी मृत्यु हो गई। यह स्त्री प्लैन्चिट द्वारा अमल किया करती थी। १९०२ ई. की घटना है कि 'हेनस' ने प्लैन्चिट द्वारा उसे बुलवाया। वह अपने साथ एक अमरीकन पुरुषके रूहको भी लेती आई, जो 'हेनस' का मित्र था, और अमरीकाके पश्चिमी सीमामें स्थित लेफरॉय (Lafroy) नामक पर्वतसे गिरकर १८९६ ई. में ३० वर्षकी आयुमें मर चुका था। 'हेनस' का कथन है कि स्त्रीने इस मृत पुरुषका उससे परिचय कराया। परिचय होनेपर 'हेनस' ने उस पुरुषसे पूछा कि जब वह पहाड़से गिरकर मरा था, तब उसकी आयु क्या थी ? उत्तर मिला कि ३३ वर्षकी। परन्तु जब 'हेनस' ने कहा कि मरते समय उसकी आयु तो ३० वर्षकी थी, तो रूहने उत्तर दिया कि उसका अभिप्राय इस समयकी आयुसे है। 'हेनस' ने कहा कि इस समयकी आयु तो ३६ वर्षकी होनी चाहिए। इस प्रकारकी टीकासे दोनों रूहें असन्तुष्ट हुईं। अन्तमें 'हेनस' ने पूछा कि अच्छा बताओ उस पर्वतका नाम क्या था जिससे गिरकर मृत्यु हुई थी ? प्लैन्चिटने लिख दिया कि 'दोनों रूहें असन्तुष्ट होकर चली गई हैं।' आंग्ल शब्द देखिए—

'But the planchette only recorded the fact that both spirits had gone away in disgust.'

From the Belief in Personal Immortality by E. S. P. Hanes P. 93.

उदाहरणसे स्पष्ट है कि प्लैन्चिटसे योग्य उत्तर नहीं मिला, और यह भी कि यह शब्द की 'दोनों रूहें असंतुष्ट होकर चली गईं।' प्लैन्चिटने रूहोंके चले जानेके बाद लिखे, तो बतलाना चाहिये कि यह लेख किसकी प्रेरणाका परिणाम था ?... स्वीकार करना पड़ेगा कि यह उत्तर उसीका या जिसका हाथ प्लैन्चिटपर रखा हुआ था। इस प्रकारके उत्तर प्रायः उसी समय दिये जाया करते हैं जब अमल करनेवाला पूछनेवालोंके प्रश्नोंसे तंग आकर अपना पीछा छुड़ाना चाहता है।

---

* यह प्लैन्चिट हृदयाकार लकड़ीका टुकड़ा होता है, जिसके नीचे दो छोटे पहिए और पेन्सिल लगी होती है...... उसके ऊपर दोनों किनारोंपर दो पुरुष अपना एक एक हाथ रखते हैं... जिससे प्लैन्चिट नीचे रखे कागजपर घूमने लगता है, जिससे कुछ अक्षर वा चिन्ह कागजपर बन जाते हैं। रूहोंको बुलानेवालोंका कथन है कि ये लेख बुलाई हुई रूहोंकी प्रेरणाका परिणाम है। परन्तु यह उनका भ्रममात्र है ॥ स्व० नारायणस्वामीकृत 'मृत्यु और परलोक' से ॥

[स्व० नारायणस्वामी कृत ' मृत्यु और परलोक ' संस्करण १ पृ० १५६-१६० से संक्षिप्त]

दूसरी परीक्षा— दिवंगत आत्मा नहीं आती !

' मृत्यु और परलोक ' के पृ० १६१ पर लिखा है— " एक दूसरे संघमें प्रश्नकर्ताने उसी संघमें उपस्थित एक जीते जागते व्यक्तिको मरा हुआ प्रकट करके उसकी रूहको बुलानेकी इच्छा प्रकट की। निमित्त पुरुष इस चालाकीसे अनभिज्ञ थे, जो उनके साथ की गई थी। इसलिए अपने नियमोंके अनुसार उन्होंने थोडी देरके बाद उत्तर दिया कि रूह आ गई। उससे कुछ प्रश्न किए गए और उत्तर भी प्राप्त किए गए। परन्तु वे उत्तर उससे सर्वथा भिन्न थे, जो वह जीवित पुरुष, जिसकी रूहकी ओरसे उत्तर दिया जाना प्रकट किया गया था— देता।

भेद खोल देनेपर प्रयोगकर्ता गण बहुत असंतुष्ट होकर चले गए। इस दूसरे संघकी कार्य प्रणालीसे स्पष्ट हो गया कि कोई रूह कहींसे न आती है और न आ सकती है। वह केवल भ्रम ही भ्रम है। भला जब एक पुरुष संघमें उपस्थित है और मरा नहीं है, तो फिर उसकी आत्मा कहांसे आगई ? ईश्वरकी ओरसे सचाई तो यह होती कि कितनी बार भी प्रार्थना करनेपर इस जीवित पुरुषकी रूह न आती "

तीसरी परीक्षा— चतुराई भी काम न आई !

उपरोक्त दो उदाहरणोंसे पाठक ऐसा अनुमान न निकालें कि आत्म-आह्वानके प्रयोगकर्ता सदा पछाडे ही जाते हैं। लेखक उन्हें चतुर समझता है। उनकी चतुराईका नमूना देखिए—

पिकमन् महान मनोज्ञानी [Pickmann the great thought reader] आक्सफर्डमें खेल दिखा रहे थे। एक कालेजके अन्दर ग्रॅजुएटने उनसे कहा कि मेरे मृत पिताका सन्देश दिलवाइए। थोडे समयके पश्चात् उत्तर आया। परन्तु बडी खलबली मची जब विद्यार्थीने कहा कि मेरा पिता तो मरा ही नहीं, अपितु यहां मेरे साथ बैठा हुआ है। बिना झिजकते पिकमनने यह कहकर उसीपर पासा पलट दिया कि ' आप मुझसे अपने पिताका संदेश लेना चाहते थे। जब मैंने प्राप्त किया तो आप लेना नहीं चाहते और कहते हैं कि मुझे तो अपनी माताके पतिका सन्देश चाहिए ! अब सत्य कहो कि आपको किसका संदेश चाहिए ? '

[Tropical Tale by Kimbo पृ० ३८ से अनुवादित]

पिकमनजीने चालाकीसे मैदान तो मार लिया, परन्तु क्या इससे रूहोंका बुलाना प्रामाणित हुआ ? कदापि नहीं!

चौथी परीक्षा = स्वयं प्रेरित लेखोंसे रूहोंका आना सिद्ध नहीं होता !

स्वयं प्रेरित लेख भी सदैव ठीक नहीं हुआ करते। माइर्स Myres ने एक चिट्ठो लिखो और उसको दो तीन लिफाफोंमें बन्द करके मुहर लगाकर एक बैंकमें सुरक्षित रखनेके लिए दे दी– जिससे उसका विषय प्रकट न होने पाए। तत्पश्चात् स्वयं प्रेरित लेखका एक संघ संघटित किया गया, कि उस चिट्ठीका विषय बताया जाय। एक ' वीराल देवी ' प्रयोगकर्ता थी। देवीने स्वयं प्रेरित लेखके द्वारा चिट्ठीका विषय कागदपर लिख लिया और उस लेखको उन्होंने संघमें प्रकट कर दिया। पश्चात १३ दिसंबर १९०४ को वह लिफाफा बँकसे मंगाकर खोला गया और चिट्ठी पढी गई, तो प्रकट हुआ कि चिट्ठोका मौलिक विषय और वह विषय जो स्वयं प्रेरित लेखसे प्राप्त किया गया था एक दूसरेसे सर्वथा विभिन्न थे। इस प्रकारके लेख कभी कभी सत्य भी निकलते हैं, जो योग-अभ्यासका फल है।

[मृत्यु और परलोक पृ० १६४५]

पांचवीं परीक्षा— मेजका हिलना, झुकना, और खटके।

एक गोल मेज लो और कुछेक पुरुष स्त्री इसके चारों ओर बैठ जावें और अपने हाथोंकी हथेलियोंको मेजपर हलकेसे रखें और प्रतीक्षा करें कि वे किसी गतिको अनुभव करनेवाले हैं।

थोडी देरमें एक विलक्षण कम्पन अनुभव करने लगेंगे, जिसका भाव प्रयोगकर्ता यह बतलाया करते हैं कि यह किसी रूहकी वहां उपस्थित होनेकी सूचना है। तत्पश्चात् बैठनेवालोंमेंसे कोई एक मेजसे कुछ पूछे......यदि तीन वार मेज झुके वा हिले वा खटका हो तो उसका अभिप्राय, ' हां ' समझा जावेगा, यदि एक खटका आदि हो तो 'नहीं' यदि दो हों तो ' संदिग्ध, ' यदि चार हों तो ' अच्छी बात ' समझी जायगी मेजके झुकावों वा खटकोंकी संख्यासे

प्रश्नका उत्तर लिया जाया करता है ..... अन्धेरे कमरेमें बैठकर यह अमल करना उपयोगी समझा जाता है।...परंतु मेजके हिलने और खटके आदि होनेके कारण मेजपर रखे हुए प्रयोगकर्ताओंके हाथ हुआ करते हैं। यदि हाथ न रखे जावें तो कितने ही विश्वास और श्रद्धासे क्यों न किसी रूहको बुलाया जाय वहां कोई फटक नहीं सकती।

[मृत्यु और परलोक पृ० १६९ ७०]

पाठक वृन्द ! रूहें बोलती क्यों नहीं ? पुन यही प्रश्न सामने आता है। आती ही नहीं तो बोले कौन ? भोले लोगोंको भ्रमानेके साधन हैं जो चाहे जिसमें फंसे।

छठी परीक्षा— उज्वल स्वप्नसे आत्माओंका बुलाया जाना सिद्ध नहीं होता।

पश्चिमी अध्यात्मवादका एक अंग उज्वल स्वप्न भी है। लाज महोदयकी वर्णित एक घटना देखिए—

पादरी इ. के इलियर अॅटलान्टिक महासागरमें एक जहाजपर यात्रा कर रहे थे, जहां तार वा चिट्ठी नहीं पहुंच सकते थे। उन्होंने १४ जनवरी १८८७ को अपनी दिन पत्रिकामें लिखा है कि पिछली रात्रि मुझे स्वप्न आया कि मेरे चचा एच. ई. का पत्र आया है, जिसमें मुझे मेरे प्यारे भाईकी ३ जनवरीको मृत्यु हो जानेकी सूचना दी है। इससे मुझे बडा दुःख हुआ। मेरा भाई स्विट्जरलंडमें रोगी अवश्य था, परन्तु उसका अन्तिम समाचार जो इंगलंड छोडते समय मुझे मिला था, यह था कि अब वह अच्छा है। जब मैं अपनी यात्रा समाप्त करके इंग्लंड वापिस आया तो जैसा कि मुझे प्रतीक्षा थी, मुझे पत्र मिला जिसमें ३ जनवरीको भाईकी मृत्युकी सूचना मुझे दी गयी थी।

[Survival of Man by sir oliver Lodge p. 106-7 से मृत्यु और परलोक पृ० १७०-१ पर उद्धरित]

पाठको ! इस प्रकारके उज्वल स्वप्नोंका अनुभव साधारण मनुष्योंको भी आता रहता है और आया हुआ है। श्री पं. सुरेन्द्रशर्मा गौरने वैदिक धर्म नवम्बर १९५३ के अंकमें 'आश्चर्योत्पादक मेरे सत्य स्वप्न' शीर्षकका जो लेख छपवाया है सो पढनेयोग्य है। क्या कभी इस प्रकारके स्वप्नोंसे मृतात्माओंका आह्वान वा रूहोंका बुलाया जाना सिद्ध हो सकता है ? कदापि नहीं ! भोले भाले लोग भले ही ऐसा विश्वास करें कि अमुक प्रयोगकर्ताके बुलानेपर स्वप्नमें मृतात्माएं आकर खरी खरी बातें बता जाया करती हैं। स्वयंस्फूर्तिसे आकर वे अनेक कार्य करती हैं— बुलाए जानेपर नहीं।

सातवीं परीक्षा— भूतप्रेतवादपर पाश्चात्य विद्वान्।

मरनेके पश्चात् और अन्त्येष्टीके (शरीरको जलानेके) पूर्व मृतक प्राणी 'प्रेत' कहलाता है। पश्चात् उसकी संज्ञा 'भूत' = गुजरा वा बीता हुआ होती है। जनवरी १९५४ के वैदिक धर्ममें छपे लेख 'मृतपुरुषोंकी मरणोत्तर दर्शनादि क्रियाएं' पढनेसे स्पष्ट हो जायगा कि मृतात्माएं सूक्ष्म शरीरको धारण करके स्वेच्छासे तो कई कार्य संपादन करती हैं, परन्तु उनसे बलात्कार कार्य करवानेके दृष्टान्त लेखकके पठनमें अबतक तो नहीं आए हैं। सब दिवंगत आत्माओंकी संज्ञा 'भूत' = बीते हुए = ही होती है। अतएव 'रूहोंको बुलाना' वा 'भूतोंको पकडना' एक ही क्रियोंके दो नाम हैं। रूहों वा भूतोंको बुलाकर उनसे काम लेना मनुष्यकी शक्तिसे बाहरकी बात है। अब भूतप्रेत वादपर पश्चिमी विद्वानोंका मत देखिये—

"भूत प्रेतकी सत्ता मायाके सदृश है। पश्चिमके अनेक विद्वान् इसको ऐसा ही मानते भी हैं। उनका कथन है कि दृष्टिकी अपूर्णता और विभ्रमसे मनुष्य कुछका कुछ देखने लगता है। उनकी परिभाषामें इस प्रकार कुछका कुछ देखनेको Halucination = इन्द्रजाल कहते हैं। कहा जाता है कि एक अग्रेज कृषक यह देखनेका अभ्यासी था कि उसके खेतमें फौजी सिपाही इधरसे उधर घूमा करते हैं। इसी प्रकार एक स्त्री कहा करती थी कि वह कतिपय परिचित मरे हुए पुरुषोंको देखा करती है कि उसके कमरेमें घूमा करते हैं। 'टुकेट' कहता है कि इंग्लंडकी पार्लामेंट के एक मरे हुए सदस्यको पार्लामेंट भवनके बरामदेमें उसने टहलते हुए देखा है।

जिस प्रकार दृष्टिविभ्रमसे मनुष्य कुछका कुछ देखता है, उसी प्रकार श्रोत्रविभ्रमसे कुछका कुछ अथवा कुछ न होनेपर भी कुछ न कुछ सुना भी करता है।"

[From Immortality by H. P. Hayness. मृत्यु और परलोक पृ० १७२]

आठवीं परीक्षा— भूतप्रेतवादपर लेखकका अनुभव— दृष्टिविभ्रम वा विचाराघात ?

सन १९०२ सक्खर सिंधकी घटना. ए. वी स्कूल इयत्ता

२ के हम १०-१२ विद्यार्थी एक टेकडीपर सूर्य अस्त होनेके पश्चात् भूतोंकी बातें परस्पर सुना रहे थे। टेकडीके नीचे सख्खरसे रोहडीको जानेवाला रेलमार्ग था, और मार्गावरण [Fencing] के तार टेकडीपरसे काष्ठके स्लीपरोंसेंसे होकर जाती थीं, इन स्लीपरोंसे १० एक फुट परे हम गोलाकार बैठे थे। जेठा नामक विद्यार्थी जो सबमें बडा था, उसने ऐसी भयंकर बातें सुनाई कि हम सब भयभीत हो गये। अकस्मात् एकको दृष्टि एक स्लीपर पर पडी। वह धीरेसे बोला ' भूत आ गया- देखो वह स्लीपर झूल रहा है। ' सबने मुडकर देखा। स्लीपर बराबर डोल रहा था। एक साजन नामक विद्यार्थीके बिना सबही भयसे कांपने लगे। कइयोंने आंखें मूंद ली। साजन लगभग ६ सेकंड तक बराबर स्लीपर [Sleeper] की ओर टकटकी लगाए देखता रहा। अंतमें उसने कहा ' स्लीपर नहीं झुलता। ' पुनः सबने स्लीपरकी ओर देखा, और सबने देखा कि स्लीपर यथापूर्व निश्चेष्ट ही खडा है। साजन हम सबमें अल्पायु था।

जिस विद्यार्थीने सर्वप्रथम स्लीपरको झूलते देखा था उसपर भूत कथाओंका भय-आघात सबसे अधिक हुआ था। उसने अपना रोग ' भूत आगया ' आदि शब्दों द्वारा अन्योंपर फेंका, और साजनके अतिरिक्त सभी पछाडे गए। साजन अल्पायु होते हुए भी बलवान हृदयका था, इसीलिए न केवल उसने उस विचारको ग्रहण नहीं किया अपितु जो ग्रहण करके रोगग्रस्त हो चुके थे। उन सबके रोगका निराकरणभी उसीने किया। सिद्ध हुआ कि दृष्टिविभ्रमसेही नहीं विचाराघातसे प्रभावित होकर भी मनुष्य कुछका कुछ देखने लगता है।

नवीं परीक्षा— भूतप्रेतवाद पर
डा० बलवंतराव गोरेका अनुभव।

डाक्टरजी, मेरे काका, लगभग ५६ वर्ष पूर्व मंबासा और जैन्ज़ीबार (पूर्वीय आफ्रिका) के युद्धसे लौट आए थे। आपने बताया कि उनकी सेनाकी एक कंपनी कार्यवश कहीं भेजी गयी, परंतु बीचमें ही कहीं गुम हो गई। बहुत ढूंढा गया परंतु कुछ पता न लगा। महीनों पश्चात् सेनाका दूसरा विभाग भी उसी ओर चल पडा। एक पडावपर आधी रातके समय अकस्मात् ओर जोरसे शब्द आने लगे- शत्रु आगया- उठो- मारो... अरे हम थोडे हैं। ' इत्यादि इसपर सब सेना जाग उठी-- शस्त्र संभाले-परंतु शत्रु कहीं नहीं था और शब्द बंद हो चुके थे। मंबासा-जैन्ज़ीबारके जंगलमें ये हिन्दी शब्द उन्हीं हिंदी कंपनीके सैनिकोंके थे, जो कई मास पूर्व उसी स्थानपर पडाव करते हुए शत्रु द्वारा मारे गए थे! दूसरे दिन उनके रेतमें दबाए प्रेतोंका भी पता लगा। शब्द सुननेके लिए सेना दूसरी रात भी वहीं पडाव डाले रही। परंतु सैनिकोंकी Will= इच्छा शक्ति अपना पता बता चुकी थी, अतएव दूसरी रात शब्दोंके आनेकी आवश्यकता भी न थी-- न वे आए।

अब पाठक ही सोचें कि यह घटना भ्रोत्र विभ्रमकी थी वा किसी वास्तविक उद्देशकी पूर्तिके लिये ? उसका मिलान जनवरीके वैदिक धर्ममें छपी घटनाओंसे करने पर पुनः यही सिद्ध होगा कि मनुष्यकी प्रबल इच्छा= Will power मरनेके पश्चात् भी अद्भुत कार्य कर सकती है-- परंतु स्वेच्छासे, किसीके दबावमें आकर नहीं।

दसवीं परीक्षा— मरणोत्तर सूचना देना रूहका बुलाया जाना सिद्ध नहीं करती !

फर्वरी १८९१ में एक अमेरिकन कृषक घरसे १०० मीलकी दूरीपर ' डूबक ' नामवाले नगरमें अचानक मर गया। पुराने वस्त्र जो वह पहने हुआ था, उन्हें वहीं फेंककर उसका पुत्र शवको घर ले आया। अपने पिताका दुःखदायी मृत्यु समाचार सुनकर उसकी पुत्री बेहोश हो गई, और कई घंटे उसी अवस्थामें पडी रही। जब सुध आयी तो उसने कहा- " *कहां हैं पिताके वस्त्र ? वे अभी मेरे* पास आए थे। श्वेत कुर्ती और अन्य काले वस्त्र और सैटिनके सलीपर पहने हुए थे। उन्होंने मुझसे कहा कि घर छोडनेके बाद बिलोंकी एक लंबी सूची तय्यार करके उन्होंने जेबमें रख ली थी, जो अपने खाकी कुर्तेके भीतरी लाल कपडेके टुकडेसे सिली थी, धन भी उसीमें है। "

मरते समय जो वस्त्र पिता पहने हुआ था, वे वही थे जिनका विवरण लडकीने दिया है। लडकीको इन वस्त्रोंके पहननेका कुछ भी ज्ञान न था। इसके सिवा कुर्तेकी भीतरवाली जेब और धनका पता न उसे और न किसी अन्यको मालूम था।

लड़कीको संतुष्ट करनेके लिए उसका भाई 'डूबक' गया, जहां उसका पिता मरा था। वहां उसने पुराने वस्त्र पाए जो एक छप्परमें रखे थे। कुर्तेकी भीतरी जेबमें वह लंबी सूची भी बिलोंकी मिली जो ३५ डालरके थे, और उसी प्रकार लाल कपड़ेके टुकड़े सिले थे जैसा लड़कीने बतलाया था। जेबके टांके बड़े और टेढ़ेमेढ़े लगे थे जैसे किसी पुरुषने लगाए हों।

[Human Personality Vol. II P. ३९ By Mayers. मृत्यु और परलोक १८३-७]

इस घटनासे पुनः मृत पुरुषकी प्रबल इच्छा-शक्तिका परिचय मिलता है- दिवंगत आत्माके बलात्कार बुलाए जानेका नहीं!

ग्यारहवीं परीक्षा- प्लैन्चिट वेदमंत्रका अर्थ नहीं लिख सका!

रूहोंको बुलानेवाला ऋषि दयानन्दकी आत्माको नहीं बुला सका!

सन् १९३४ के लगभग मैंने कराचीमें श्री स्वामी वेदानन्दजीसे अपनी शंकाएं कुछ निम्न प्रकार निवृत्त कराईं-

मैं— रूहोंको बुलानेवाले भारतीय प्रयोगकर्ता श्री... कई वर्षोंसे भारतके लगभग सभी बड़े बड़े नगरोंमें अपने प्रयोग दिखा रहे हैं। सुना है कि लाहोरमें भी कई वर्ष पूर्व उन्होंने आर्यसमाजके प्रवर्तक ऋषि दयानन्दकी आत्माको बुलानेका दावा किया था। फिर क्या हुआ?

स्वामीजी- दावा किया। निमित्त पुरुषोंने 'प्लैन्चिट' पर हाथ रखे। जब कम्पन आरंभ हुआ तो प्रयोगकर्ताने कहा 'ऋषिकी आत्मा आगई' लोगोंने साधारण प्रश्न किए, जिनके उत्तर दिए गए। मैंने ऋग्वेदका एक ऐसा मन्त्र पढ़ा जिसका भाष्य ऋषि नहीं कर पाये थे, और पूछा कि इस मन्त्रके अर्थोंमें मतभेद हो रहा है, कृपया बताइए कि इसका वास्तविक अर्थ क्या है? यदि परलोकसे बुलाई गई आत्माके प्रभावसे गति पाकर 'प्लैन्चिट' लिखता होता, और यदि ऋषिकी आत्मा सचमुच आयी होती, तो अर्थ अवश्य लिखे जाते। परंतु न तो 'प्लैन्चिट' के लेख दिवंगत आत्माओंके प्रभावसे लिखे जाते हैं, न दिवंगत आत्मा बुलाई जा सकती है, फिर भला उत्तर लिखता कौन? अर्थात् 'प्लैन्चिट' से कोई उत्तर न बन सका!

मैं- यदि ऋषिकी आत्मा नहीं आयी थी, तो लोगोंके साधारण प्रश्नोंका उत्तर कैसा लिखा गया?

स्वामीजी- साधारण प्रश्नोंके उत्तर देना प्रयोगकर्ताओंकी योग्यता और ज्ञानके बाहरकी बात न थी, इसलिए वे तो दिए गए। परन्तु वेदमंत्रके अर्थ बतानेमें संस्कृतके ज्ञानकी आवश्यकता थी, जो प्रयोगकर्ता नहीं जानते थे फिर उत्तर कैसे देते?' प्लैन्चिटके 'लेख प्रयोगकर्ताओंकी चालाकी या योग्यताका परिणाम होते हैं। रूहोंका बुलाया जाना तो एक ढकोसला है, जिसे आस्तिक बुद्धिवाले कभी मान नहीं सकते।

टीप- लाहोरमें ऋषि दयानन्दजीकी आत्माको बुलानेकी उपरोक्त घटना 'मृत्यु और परलोक' के प्रथम संस्करण सन् १९२८ के पृ० १६०-१६१ पर भी छपी है। वहां प्रयोगकर्ताका नाम निर्देश नहीं है, इसलिए लेखकने भी गुप्त रखा।

बारहवीं परीक्षा- क्या नेपोलियनकी आत्मा अविश्वासीसे डर सकती है?

रूह बुलानेके प्रयोगी कहते हैं कि यदि रूहोंके आने और संदेश देनेमें किसीका विश्वास न हो तो न तो रूहें बुलानेसे आती हैं और न सन्देश देती हैं। उदाहरणार्थ, यदि कार्य आरम्भ होनेसे पूर्व कोई सन्देहवादी निराशासे कह दे कि 'यह सदैव होता है कि जब मैं उपस्थित होता हूं तो न कोई रूह आती है और न संदेश देती है', तो रूहोंके आनेकी बहुत कम संभावना रहती है। यही नहीं, अपितु जो पूर्ण विश्वास रखनेवाले प्रयोगकर्ता 'प्लैन्चिट' या मेजपर हाथ रखकर बैठते हैं वे भी प्रायः असफल रह जाते हैं।

इस पर हड्सन लिखते हैं — 'जीवित नेपोलिअनका तो नाम सुनकर ही सारा यूरोप कांप उठता था। यूरोपके शासकोंको तो वह कठपुतलीके समान नचाया करता था। मरनेके बाद ही क्या उसकी आत्मा अविश्वासीके सामने आनेसे डरने लगी है?'

[The Law of psychic phenomena by Hudson p. 209-10]

पाठको! प्रयोगकर्ता कहते हैं कि दिवंगत आत्माएं मिनिटोंमें घुलोकसे पृथिवीतक कोटियों मील उड़कर आती हैं, मेज और प्लैन्चिटको हिलाकर अपने आनेकी सूचना देती हैं, और पूछनेपर अनेकों रहस्य बतातीं और चमत्कार दिखाती हैं। इतनी शक्तिशाली आत्माएं यदि घुलोकमें बैठी हुई यह

देख लें कि पृथिवीपर बुलाए संघमें एक रूहोंको बुलानेमें विश्वास न रखनेवाला उपस्थित है, तो वे द्युलोकसे नीचे उतरती ही नहीं – इस ढकोसलेको निर्बुद्ध मनुष्य ही मान सकता है! परंतु इसमें प्रयोगकर्ताओंका लाभ यह है, कि एक तो इनके स्वार्थी वा निर्बुद्ध अनुयायी बढते हैं, और दूसरा जहां असफल होते हैं वहां ' संघमें कोई अविश्वासी बैठा हुआ है ' ऐसा कहकर पीछा छुडा भागते हैं ।

६ --- बाइबलके अनुसार विश्वासी कौन ? अविश्वासी कौन ? काफिर कौन ?

स्मरण रहे कि रूहोंको बुलानेका ढकोसला ईसाई नास्तिकोंकी कल्पना है, ईसाई और मुसलमान मानते हैं कि मनुष्य मरकर या तो सदाके स्वर्गको या सदाके नरकको प्राप्त होता है, जो ऐसा मानते हैं वे विश्वासी = Believers = आस्तिक = मोमिन कहलाते हैं ।

रूहोंको बुलानेके प्रयोग करनेवाले पाश्चात्य आज लगभग ५० वर्षोंसे बाइबल और कुर्आनके इस मन्तव्यका खण्डन कर रहे हैं । वे सिद्ध कर रहे हैं कि न तो मनुष्य मरकर दायमी बाहिश्त = Eternal Heaven प्राप्त करता है, और न दायमी दोजख = Etarnal hell ! वे समझते हैं कि मरनेके पश्चात् सभी आत्माएं किसी स्थानपर जाकर रहती हैं, और वहांसे पुनः पृथिवी पर बुलाई जा सकती हैं। उन्होंने सीजर, अलेक्षान्डर, नेपोलियन, हिटलर आदिकी आत्माओंको बुलानेके दावे किए हैं ! बडे बडे लाटपादरी भी इनके प्रयोग देखनेको जाते होंगे, परंतु आक्षेप करते हैं वा नहीं, ये उनकी वे जाने ।

बाइबल और कुर्आनके अनुसार ये रूहोंको बुलानेवाले स्वयमेव अविश्वासी = Non believers, = नास्तिक = काफिर सिद्ध होते है !!!

७ क्या नास्तिक भी हिंदुओंके गुरु बन सकते हैं ?

ईसाइयों तथा मुसलमानोंके समान भारतीय आर्य जाती भी परलोकको दो ही स्थानोंमें विभक्त करती है, स्वर्ग = सुख विशेष तथा नरक = दुःख विशेष, ' मुक्ति ' स्वर्गके अन्तर्गत है ।

ये स्वर्ग और नरकके दो स्थान पुनः अपनी विशेषताओंके अनुसार असंख्य कीट, पशु पक्षियोंकी योनियोंमें जा बंटे हैं— जिन्हे मनुष्य मरकर अपने कर्मोंके अनुसार प्राप्त होता है। वेद, शास्त्र, उपनिषद्, पुराणादि द्वारा समर्थित होनेके कारण इस आवागमनके सिद्धान्तको आर्यजातिके सभी आस्तिक मानते हैं । बाइबल और कुर्आनसे भी इसकी पुष्टि हो सकती है— यूरोपादिके कई नास्तिक वैज्ञानिकोंने भी इसे मुक्तकण्ठसे स्वीकार किया है। सबसे अधिक अकाट्य प्रमाण यह है कि स्वयं पुनर्जन्मको न माननेवाली ईसाई आदि जातियोंमें कई बालकोंने पुनः उत्पन्न होकर अपने पूर्वजन्मके अस्तित्वको सप्रमाण सिद्ध कर दिखाया है !

अतः जो दिवंगत पुरुषोंकी आत्माको बुलानेका दावा करता है वह वैदिक धर्मके सिद्धान्तोंको ठुकराकर निम्न प्रकारकी असंभव डींगें मारता है—

क – मैं मुक्ति प्राप्त आत्माको आपके द्युलोक, सूर्यलोक, गोलोक, ब्रह्मलोक वैकुण्ठादिसे बलात्कार निकालकर पृथिवी पर सदेश, परामर्श वा साक्षि देनेके लिए ला सकता हू ।

ख – शुभ कर्मोंके कारण जो आत्माए स्वर्गीय सुखमें आपके ईश्वरी न्यायसे मग्न पडी हुई हैं, मैं उन्हे भी मोक्षानन्दसे छुडाकर संदेश, साक्षि वा रहस्य बतानेके लिए अपने संघमें ला खडा कर सकता हू ! मनुष्य वा देवयोनि जिसमें वह सुखभोग रही होती हैं, उसे वहीं उतारकर रख आती है, और कार्य समाप्त होनेपर पुनः उसीमें जाकर प्रविष्ट हो जाती है ।

ग – दुष्कृत्योंके कारण जो आत्माएं वृक्ष, कीटादि योनियोंमें नरककी यातनाएं ईश्वरी न्यायानुकूल भोग रही हैं, मैं उन्हें भी अल्प समयके लिए ही क्यों न हो— दुःखोंसे छुडाकर आवश्यक समाचार सुनाने और परामर्श देनेके लिए पृथिवीपर बुला सकता हूं। कार्य समाप्त करके ये नरकवासी आत्माए अपनी अपनी योनियोंमें पुनः जा घुसती हैं ।

यह हिंदू जाति ही है जो ऐसी वञ्चनाएं करनेवालोंका बहिष्कार नहीं कर सकती। यही नहीं रूहोंके बुलानेवाले हिंदुओंके सिद्धान्तोंके पैरों तले रौंदते हुए भी हिंदुओंकी परलोक विद्याके संशोधक कहला सकते हैं, और कोई पूछता नहीं ! हिंदु जाति नास्तिकोंसे धर्मशिक्षा ले रही है।

१३ वीं, १४, वीं १५ वीं परीक्षाएं-कल्पना करो कि रूहोंको बुलानेवालोंके सघमें निम्न प्रश्न पूछे गए—

१३ वीं- मुसलमान स्त्रीने पूछा- ऐ रूहोंको सातवें आसमान, बहिश्त, दोजखसे बुला लानेवालो! हमारा विश्वास है कि मुर्दा कयामततक कब्रमें पड़ा रहता है। तीन दिन पूर्व मेरा पति मरा है। उसका धन कहीं दबा हुआ है, जिसका पता अचानक मरनेके कारण वह मुझे नहीं बता सका। क्या कब्र दिखानेपर आप उससे पूछ कर वह पता मुझे बता सकते हैं ?

१४ वीं- पोलीस अधिकारीने पूछा- ऐ रूहोंको त्रिलोकीके गुप्त स्थानोंसे ढूंढ निकालनेवालो! अभी अभी एक कैदी जेलसे भाग निकला है। तुरंत ही मोटरें दौड़ाकर नगरको घेर लिया गया है, अतएव वह नगरके भीतर ही है- बाहर नहीं गया है। क्या आप नामादि बतानेपर उसका पता बता सकते हैं कि वह किस स्थानमें छुपा हुआ है ? सहस्रोंका पुरस्कार पाओगे।

१५ वीं- ईसाई बुढ़ियाने पूछा, हे रूहोंको तीसरे आसमानसे उतार लानेवालो! मेरा इकलौता पुत्र मरणोन्मुख है। जिह्वा बंद हो गई है। उसने अपना न मृत्युपत्र बनाया है, न धन बताया है। आपके संदेश पाकर सैकड़ों वर्ष पूर्वके मरे हुए भी दौड़ आते हैं, अतः मेरा जीवन्त पुत्र तो अवश्य ही आपके संदेशका उत्तर देगा। क्या उससे पूछकर मुझे आप बता सकते हैं कि उसने अपना कितना कितना धन कहां कहां लगाया हुआ है, क्या लेना है, क्या देना है ?

पाठको ! ये सुगम कार्य रूहोंको बुलानेवाले कदापि कर नहीं सकते। अतः वे यही कहकर पीछा छुड़ाएंगे कि संघमें कोई अविश्वासी उपस्थित है।

८- रूह बुलानेवालोंको पाश्चात्य विद्वानोंके प्रमाणपत्र।

१. रूहबुलानेके प्रयोग करनेवाली दो बहनोंके संबंधमें जो किसी फॉक्स (Fox) नामक पुरुषकी लडकियां थीं, छलकपटका संदेह हुआ। अंतमें दो भिन्न अवसरोंपर दोनोंने अपनी चालाकी स्वीकार की और बतलाया कि वे अपने ही घुटने और उंगलियां चटखाकर शब्दोत्पन्न किया करती थीं। (Spiritualism by J. A. Hill p. 15)

२. 'हिल' विद्वानने लिखा है कि रूह बुलानेवालोंमें इतना छलकपट (Fraud) और इतनी अधिक अंधविश्वासता (Excessive Credulity) होती है— जिससे मुझे इतनी घृणा है कि मैं इनके साथ बैठना उठना भी नहीं चाहता (Spiritualism p. 6)

३. 'हिल' अन्यत्र लिखते हैं कि रूह बुलानेके संबंधमें जो प्रमाण दिये जाते हैं वे संतोष योग्य नहीं है...ये सब काम धोखा देनेके लिए किए जाते हैं...तीन मेडियमोंका वर्णन किया है, जो थोड़े ही समयमें एकके पश्चात् दूसरा और फिर तीसरा धोखा (Trick) करते हुए पकड़े गए (Spiritulism by J. A. H 16)

४. 'हेनेस' लिखते हैं- यह रूहोंका बुलाना आदि सब चालाकी है, यदि मरे हुए पुरुषोंकी रूहें जीवन्त पुरुषों से बातचीत कर सकती हैं, तो साक्षात् उन्हींसे क्यों नहीं बोलतीं, जो उनसे बोलना चाहते हैं ? क्यों किसी माध्यमके द्वारा ही बात करती है ?...जनता इन रूह बुलानेवालोंकी बड़ी कृतज्ञ होगी, यदि वे कोई ऐसी योजना बनाएं जिससे मृत पुरुषोंकी साक्षि कमिशन द्वारा वा खुले न्यायालयोंमें हो सका करे (The Belief in Personal Immortality by E. S. P. Hayness p. 109)

५. मैस्केलाइन (Maskelyne) और डेवन्ट (Devant) दो विद्वानोंने, जिन्हें रूह बुलानेके एक संघमें अनेक बातें दिखलायी गई थीं, उसी संघमें उन्होंने उन सब बातोंको दुहराकर दिखला दिया और प्रकट कर दिया कि इन बातोंमें किसी वा किन्हीं रूहोंका कुछ भी हस्तक्षेप वा दखल नहीं है। (The Belif in Personal Immortality by E. S. P. Hayness Chapter on Spiritism.)

टीप- उपरोक्त पांचों धाराओंका अनुवाद 'मृत्यु और परलोक' से उद्धरित है। वहां पृ० १९६-२०० तक इनकी सं० क्रमशः ७, ८, ९, १३, १ इस प्रकार है।

नास्तिकता आत्माह्वान वा रूह बुलानेके बहाने फैलाई जा रही है। पाठक इससे स्वयं बचें और अन्योंको बचाएं, यही प्रार्थना है। इत्योम् !

[स्वाध्यायमण्डल-परीक्षासमिति]

संस्कृतभाषा परीक्षा

१९-२० फरवरी ५५ ई. की संस्कृतभाषा परीक्षाओंका

का र्य क्र म

(केवल मध्य प्रदेशके लिये)

शनिवार १९ फरवरी		रविवार २० फरवरी	
१०॥ से १॥	२॥ से ५॥	१०॥ से १॥	२॥ से ५॥
विशारद-प्रश्न पत्र १	विशारद-प्रश्न पत्र २	विशारद-प्रश्न प्रत्र ३	विशारद-प्रश्न पत्र ४
×	परिचय-प्रश्न पत्र १	परिचय-प्रश्न पत्र २	परिचय-प्रश्न पत्र ३
×	×	प्रवेशिका-प्रश्न पत्र १	प्रवेशिका-प्रश्न पत्र २
×	×	प्रारम्भिणी	×

संस्कृतभाषाका अध्ययन करना प्रत्येक भारतवासीका राष्ट्रीय धर्म है।

संस्कृत हमारी मातृभाषा है। अतः उसका ज्ञान होना परम आवश्यक है। जो मातृभाषा है वह कठिन या दुर्बोध कैसे हो सकती है?

वैदिक धर्म

(वर्ष ३५)

विषयानुक्रमणिका

सत्य सनातन मानवधर्मकी जागृतिसे समर्थ बने भारतद्वारा

विश्व शान्ति की स्थापना

करनेके लिये

गायत्री-मन्त्र-जपका अनुष्ठान

गायत्री मंत्रका जप करनेकी प्रथा बहुत प्राचीन कालसे भारतमें प्रचलित है। 'गायत्री' का अर्थ (गायन्तं त्रायते) "जप करनेवालेका संरक्षण करती है" ऐसा है। इसी कारण इष्ट सिद्धिके लिये यह जपका अनुष्ठान किया जाता है।

जिसका उपनयन हुआ है, वह द्विज प्रातः सायं दिनमें दोवार संध्या करता है और प्रतिवारकी संध्यामें कमसे कम १० वार गायत्री मंत्रका जप वह अवश्यही करता है। अपने भारतमें उपनयनके अधिकारी द्विज दो करोड हैं। यदि ये प्रतिदिन १२ वार ही गायत्री मंत्रका जप करेंगे, तो प्रतिदिन २४ कोटि जप होगा। यदि यह जप संगठित होकर एक विचारसे, एक उद्देश्यकी सिद्धिके लिये किया जायगा, तो प्रतिदिन एक महागायत्री पुरश्चरण हो सकता है। पर यह जप एक नियम, एक विचार और एक उद्देश्यकी सिद्धिके लिये नहीं होता, इस कारण इससे कुछ भी प्रत्यक्ष लाभ हो रहा है, ऐसा नहीं दीखता।

मानवी मनकी शक्ति

मानवी मनमें बडी भारी शक्ति है। जो विचार मनुष्यके मनमें आता है, वह विचार मनके विश्वव्यापक अन्त स्तरमें फैलता है और यदि इस विचारके पीछे अनेकोंकी संगठित मानसशक्ति रहे, तो वह विचार निःसन्देह सिद्ध होता है, इसीलिये कहा है- **"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः"** मानवोंके बंधन और मोक्षका कारण उनका मनही है।

मानस शरीर

मनुष्यके शरीर स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण ये एक दूसरेके अन्दर, एकमें दूसरा, दूसरेमें तीसरा ऐसे हैं। इसमें कारण शरीर ही मन है। इस मनमें दो विभाग हैं। (१) एक जाग्रतीमें काम करनेवाला मन, और (२) दूसरा सुषुप्तिमें कार्य करनेवाला मन। योगसाधनसे जाग्रतिमें कार्य करनेवाला मन स्तब्ध किया जाता है और यह स्तब्ध होते ही सुषुप्तिमें कार्य करनेवाला मन जाग्रत होता है और अद्भुत शक्ति प्रदर्शित करने लगता है। इसका वर्णन वेदमंत्रमें इस तरह किया है-

> यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
> दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः
> शिवसंकल्पमस्तु॥ वा० यजु० ३४।१

'जो मन जाग्रतिमें दूर जाता है, वह सुषुप्ति अवस्थामें भी अतिदूर चला जाता है। यह दूर जानेवाला ज्योतियोंकी ज्योति जैसा मेरा मन शुभकामना करनेवाला बने।'

यह मन यदि शुभकामना करेगा, तो शुभसिद्धि होगी। और यदि यह अशुभ कामना करेगा, तो यही मन मनुष्य का नाश भी करेगा। इसलिये मनको एकही शुभकामनामें रखना अत्यन्त आवश्यक है। जो विचार मनमें वारंवार भर दिये जाते हैं, वे विचार मनके अन्तःस्तरमें बैठ जाते हैं और वे मनुष्यको सिद्धितक पहुंचाते हैं। जितने अधिक लोग एक समय एक विचारको मनके अन्दर धारण करेंगे, और अपनी इच्छा शक्तिको उसके पीछे लगायेंगे, उतना उसका परिणाम मनुष्यको सिद्धितक शीघ्र पहुंचा देगा और इस विचार शक्तिका वेग जितना अधिक बढाया जायगा उतना उसका इष्ट परिणाम मानवोंके संघपर अधिक होगा। यही नियम जपानुष्ठान की सिद्धिके लिये लागू है। यदि

अनेक लोग मिलकर एक विचारसे एक ध्येयकी सिद्धिके लिये अपनी पूरी इच्छा शक्ति लगाकर जप करेंगे तो सिद्धि अवश्य होगी। अनेकोंकी संगठित मानसशक्ति कितनी केन्द्रित होती है, उसपर सिद्धि अवलंबित रहती है।

जगत्में भीतिका वायुमण्डल

जगत्में इस समय भयका वायुमंडल बना है। युद्धकी तैयारीके लिये सब राष्ट्र लगे हैं। प्रत्येक राष्ट्र दूसरोंसे डर रहा है। मानवोंके मनोंका अन्तःस्तर इस समय इस भयसे व्याप्त हुआ है।

इस भयको दूर करनेके लिये यदि हम अपनी आध्यात्मिक शक्तिको जाग्रत करके बहुसंख्य लोगोंके मनोंमें निर्भय शान्तिके शुभ पवित्र आध्यात्मिक विचार प्रभावित करेंगे, तो इससे निर्भय शान्तिका वायुमण्डल इतना प्रभावी हो जायगा कि इसके प्रभावसे भीतिका विचार जडमूल समेत विनष्ट हो जायगा, और युद्धमान राष्ट्रकी बहुसंख्य जनतामें प्रेमपूर्ण शान्तिकी स्थापना हो जायगी। इससे सर्व साधारण मनुष्योंको सच्ची शान्तिका परमानन्द प्राप्त होगा। इसी तरहकी सिद्धिके लिये ये अनुष्ठान हैं।

मंत्रमें दैवी शक्ति

वेदमन्त्रोंमें दैवी शक्ति रहती है, इस विषयमें वेदमंत्र जो कहता है वह सुनो—

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्।
यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः॥ ऋ. १।१६४।३९

" वेदमन्त्रोंमें दैवी शक्तियां हैं।" इसलिये योग्य रीतिसे मन्त्रका जप करनेसे इष्ट सिद्धि होती है पर मनुष्यकी सब शक्तियां अनुष्ठानमें लगनी चाहिये यह मुख्य बात है। इस संगठित प्रयत्नसे इस मानसिक महाशक्तिको विशेष महत्वके राष्ट्रीय कार्यकी सिद्धिके लिये प्रयुक्त करना चाहते हैं। हमारा राष्ट्रीय कार्य यह है—

हमारा उद्देश्य
विश्वशान्तिकी स्थापना करना है।

" जगत्में शान्तिकी स्थापना करनेके लिये सबसे प्रथम भारतमें ऋषिप्रणीत वैदिक शुद्ध सत्य सनातन मानव धर्मकी जागृतिके द्वारा अध्यात्म ज्ञानका प्रचार करना आवश्यक है। इस अध्यात्मशक्तिसे भारतको विश्वशान्तिकी स्थापनाका कार्य करनेके लिये योग्य और सामर्थ्यवान् बनाना चाहिये। **अध्यात्मशक्तिसे सुसंपन्न हुआ भारतही जगत्में सच्ची शान्ति स्थापन करनेका कार्य करेगा।** इस भारतके कर्तव्यका आवश्यक भार भारतके सुपुत्रोंपर है, वैसा वह मेरे ऊपर भी है। इस भारको उठानेका सामर्थ्य मुझमें आजाय, इसलिये **मैं आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, बल, ज्ञानविज्ञानसंपन्न बनूं** और अपने तन मन धनकी शक्ति इस विश्वशान्तिके कार्यको शीघ्र संपन्न करनेके लिये अर्पण करूं और अर्पण करनेके समय मैं पीछे न हटूं, इतना बल मुझमें आजाय, तथा भारतवासियोंमें भी यह बल आजाय और इससे विश्वशान्तिकी स्थापना करनेके कार्यमें भारतका विजय हो।"

इस एक मात्र उद्देश्यसे हम संघटित होकर यह गायत्री पुरश्चरणका अनुष्ठान करना चाहते हैं। सांघिक अनुष्ठान करनेका भाव यह है— " इस गायत्री जपके अनुष्ठान करने वाले अपने अपने स्थानपर रहकर ही नियत स्थानमें, नियत समयमें नियत जप किया करें और प्रतिमास ' अपनी जपसंख्या इतनी हुई ' ऐसा लिखकर हमारे कार्यालयमें भेज दें। व्यक्तिशः पत्र व्यवहारकी अपेक्षा ग्रामके अथवा नगर विभागके जपकेन्द्रके सञ्चालक " अपने केन्द्रमें इस मासमें इतना जप हुआ " ऐसा सबशः लिखकर भेजेंगे तो वह अधिक अच्छा होगा।

इस रीतिसे हमारे पास लिखकर आनेसे हम प्रतिमासकी जपसंख्या सब जपकेन्द्रोंको लिखकर भेजेंगे, जिससे जपकी प्रगति की कल्पना सब जपकर्ताओंको प्रतिमास हो सकेगी।

जपसंख्या

गायत्री मंत्रमें २४ अक्षर हैं। इस कारण पुरश्चरणकी जपसंख्या २४ लक्ष होनी चाहिये—

लभतेऽभिमतां सिद्धिं चतुर्विंशतिलक्षतः।
चतुर्विंशतिलक्षं तु यज्ञकल्पमतं यथा।

वैशंपायन

कल्पोक्तैव कृते संख्या त्रेतायां द्विगुणा भवेत्।
द्वापरे त्रिगुणा प्रोक्ता कलौ संख्या चतुर्गुणा॥

वैशंपायन संहिता

षण्णवति लक्ष संख्याजपं कलौ पुरश्चरणम् ।
गायत्री पुरश्चरण पद्धति

२४ लक्ष जप करनेसे जपकर्ता सिद्धिको प्राप्त करता है। यह वैयक्तिक लाभ है। हमें राष्ट्रकार्य संघद्वारा करना है, इसलिये ऐसे १०० पुरश्चरण करने चाहिये अर्थात् २४ कोटि जप होना चाहिये। यह अनुष्ठान सहज हो सके इसलिये २४ लक्ष जपका एक पुरश्चरण करना और क्रमसे ऐसे पुरश्चरण १०० होने तक करते जाना। संघानुष्ठानका यह मार्ग अवलंबन करनेका विचार किया है।

इस अनुष्ठानकी सिद्धि ईश्वरकी कृपापर तथा जपकर्ताओंके सहकार्यपर अवलंबित है।

यदि १०० जपकर्ता मिले और प्रत्येकने प्रतिदिन १००० जप किया तो प्रतिदिन एक लक्ष जप होगा और एक कोटि जपके लिये साडेतीन मास लगेंगे तथा २४ कोटि जपके लिये ७ वर्ष लगेंगे। यदि जपकर्ता अधिक मिलेंगे तो यह अनुष्ठान शीघ्र होगा और कम मिले तो समय अधिक लगेगा। इस जपके नियम ये हैं—

जपानुष्ठानके नियम

[१] गायत्री मंत्रके जपका समय प्रातःकालही है। ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर प्रातर्विधिसे निवृत्त होकर, स्नान संध्यादि अपना दैनिक अनुष्ठान करके, इस नैमित्तिक जपको करना चाहिये। एक हजार जप करनेके लिये डेढ से दो घण्टेका समय लगता है

[२] गायत्री मंत्रका जप करनेका उत्तम समय प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तसे ९ बजे तकका है। ९ से १२ तकका समय मध्यम है। और इसके पश्चातका समय गौण है। इसलिये जपकर्ता प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तसे ९ बजेतकही अपना जपानुष्ठान करें। गायत्री मंत्र जपका अनुष्ठान सौर-तेजसे जीवसत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान है, इसलिये दिनके पूर्वार्धमें सूर्यतेज बढता है इस कारण दिनके पूर्वार्धमेंही करना उचित है। शामके समय सूर्यतेज कम होता है इस कारण वह समय पूर्वार्धकी अपेक्षा गौण है। इस कारण जपकर्ता दिनके पूर्वार्धमेंही जप करें। परंतु जो जपकर्ता अथवा हवनानुष्ठानकर्ता आज इतनी जपसंख्या करनी है ऐसा संकल्प करके जप करते हैं, वे अपनी संख्या पूर्ण होनेतक बैठकर जप करते रहें।

जपसंख्या

[३] जपकर्ता प्रतिदिन कमसे कम १०८ वार गायत्री मंत्रका जप अवश्य करे। जितना अधिक हो उतना अधिक अच्छा है। २००; ३००; ५००; १००० अथवा अधिक करेंगे तो अधिक अच्छा है। जपके तीन प्रकार हैं, जैसे—

यदुच्चनीचस्वरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः।
मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा जपयज्ञः स वाचिकः ॥ ३ ॥
शनैरुच्चारयेन्मन्त्रं मन्दमोष्ठौ प्रचालयेत्।
अपरैरश्रुतः किंचित्स उपांशुजपः स्मृतः ॥ ४ ॥
धिया यदक्षरश्रेण्या वर्णाद्वर्णं पदात्पदम्।
शब्दार्थचिन्तनं भूयः कथ्यते मानसो जपः ॥५॥
वाचिकस्त्वेक एव स्यादुपांशुः शतमुच्यते।
सहस्रं मानसः प्रोक्तो मन्वत्रिभृगुनारदैः ॥ ६ ॥
शौनकः

१ अक्षरोंका बडा स्पष्ट उच्चारण करके जो जप करते हैं वह 'वाचिक जप' कहलाता है, २ मंत्रके अक्षरोंका उच्चारण तो हो, पर पास बैठा मनुष्य सुन न सके ऐसे मुखमेंही उच्चारण करके जो जप होता है वह 'उपांशु जप' कहलाता है। ३ मनमेंही अर्थका मनन करते हुए जो जप किया जाता है वह 'मानस जप' कहलाता है। वाचिक जप एक गुणा, उपांशु जप शतगुणित और मानस जप सहस्रगुणित होता है। सर्वसाधारण लोग उपांशु जप करें तो अच्छा है। मानस जप के लिये समय अधिक अपेक्षित है और सांघिक अनुष्ठान के लिये मानस जप होना सर्वसाधारणके लिये असंभव है। इस कारण जपकर्ता यह अनुष्ठान उपांशु जपसे करें।

जप स्थानकी सजावट

[४] जप करनेके लिये अपने घरमें जो सबसे उत्तम रमणीय तथा उपद्रवरहित स्थान हो वह नियत करना चाहिये। इस स्थानको उत्तम सात्त्विक भावना बढानेवाले मन्त्रों और चित्रोंसे सजाना चाहिये। उपासनाके विरोधी भाव उत्पन्न करनेवाले पदार्थ वहां न रहें।

मनः संतोषणं शौचं मौनं मन्त्रार्थचिन्तनम् ।
अकामत्वमनिर्वेदो जपसंपत्तिहेतवः ॥

मनकी प्रसन्नता, पवित्रता, मौन, मंत्रके अर्थका मनन, स्वार्थकामनाका त्याग और खेद न करना इससे जपकी सिद्धि होती है। शुद्धता, स्वच्छता और सात्विकता वहां जितनी अधिक रहे उतनी वहां रखनेकी दक्षता जपकर्ताको रखनी चाहिये। वहां सुगंधित धूप जलता रहे, चन्दन तथा सुगंधित सामग्रीका हवन हो और वहां पवित्रता अधिकसे अधिक रखी जावे। वहां बैठनेसे मन आनन्द प्रसन्न रहे ऐसा वह स्थान हो। जपकर्ता अपनी परिस्थितिके अनुसार यहां की रमणीयता जितनी रख सके उतनी रखे। वहां बैठतेही हम यहाँ विशेष महत्त्वके कार्यको करनेके लिये बैठे हैं ऐसा जपकर्ताको प्रतीत होता रहे ऐसा वह स्थान हो।

मन्त्रका ऋषि-देवता-छन्द

[५] गायत्री मन्त्रका छन्दर्षि ऐसा है— " तत्सवितुरिति मन्त्रस्य विश्वामित्र ऋषिः, सविता देवता, गायत्री छन्दः।"

ऋषिः— गायत्री मन्त्रका ऋषि ' विश्वामित्र ' है। ' विश्वामित्रः सर्वमित्रः ' विश्वामित्रका अर्थ सर्वमित्र है। जपकर्ता सर्वमित्र बननेका यत्न करे। अपने मनसे द्वेषभाव दूर करके सबके साथ मित्रवत् आचरण करे। विश्वामित्रकी मनःस्थिति जपकर्ताके मनमें अंशतः आजाय। मन्त्र जपकी सिद्धि प्राप्त होनेके लिये ऐसा मनका भाव बनना आवश्यक है।

क्रोधं लोभं तथा निद्रां निष्ठीवनविजृंभणे ।
दर्शनं च विनीचानां वर्जयेज्जपकर्मणि ॥

जपके समय क्रोध, लोभ, निद्रा, थूंकना, जमुहाइ लेना, नीचकर्म करनेवालोंका दर्शन करना उचित नहीं है।

देवता— इस गायत्री मन्त्रकी देवता ' सविता ' है। ' सविता वै देवानां प्रसविता ' (श. ब्रा. १।१।२।१७) सब विश्वका प्रसव अपनेमेंसे करनेवाला सविता है। परमात्माने ' एकोऽहं बहु स्यां ' (छां. उ ६।२।३; तै० उ० २।६।१) ' मैं एक हूं अब अनेक बनूंगा ' ऐसा संकल्प किया, तब उसका मूलप्रकृतिसे संयोग होकर जो पहिला आविष्कार प्रगट हुआ वही सूर्य अथवा सविता है। परब्रह्म परमात्मासे सूर्य, सूर्यसे पृथिवी और पृथिवीसे मनुष्य हुए हैं। इस तरह सविता सबका प्रसविता है। तथा

योऽसौ आदित्ये पुरुषः सो असौ अहम् ।
वा. य. ४०।१७

' जो यह सूर्यमण्डलमें पुरुष है वह मैं हूं। ' सूर्यसे पृथिवी और पृथिवीसे मैं जपकर्ता हुआ हूं। सूर्य पिता है और मैं उसका पुत्र हूं। यहां पितासे पुत्रने शक्ति प्राप्त करनी है।

सूर्य आत्मा जगतः तस्थुषश्च । ऋ. १।११५।१

' सूर्य स्थावर जंगमका जीवनदाता है। ' सूर्यमें जो अद्भुत जीवन शक्ति है वह जपकर्ताने प्राप्त करनी है। गायत्री मंत्रका जप करनेके समय जपकर्ता अपने मनमें ऐसी भावना रखे ' सूर्यमें जो अद्भुत आध्यात्मिक जीवन शक्ति है उसको प्राप्त करके मैं सामर्थ्यवान् बन रहा हूं। " ऐसा भाव मनमें रखनेसे जपकर्ताके मनका सौरशक्तिके साथ संबंध होता है और इस संबंधसे वह शक्ति जपकर्तामें आने लगती है। तथा—

सूर्यः चक्षुः भूत्वा अक्षिणी प्राविशत् । ऐ. उ. १।२

' सूर्य नेत्रका रूप धारण करके मेरे आंखमें आकर रहा है। ' इस तरह सूर्य पिता है और जपकर्ताका आंख उस सूर्यका पुत्र है। इस तरह यह पितापुत्र संबंध यहां है। सूर्योदयके पश्चात् आधा घण्टा होनेके पश्चात् सूर्यपर दृष्टि स्थिर करनेसे नेत्रमें सौरशक्ति आती है और आंखका आरोग्य बढता है। यह प्रथम दिन १।२ निमेष (सेकंड) करना और बढाते बढाते दो मासके अंतर ५।१० मिनिट देख सकते हैं। यह नेत्र द्वारा सूर्योपासना है।

इसी तरह नाभिस्थानमें ' सूर्यचक्र ' है। यह नाभीके पीछे पृष्ठवंशमें है। इसमें सूर्यशक्ति रहकर पाचन आदि क्रिया करती है। पेटके सब व्यवहार इस शक्तिसे होते हैं। योगसाधनमें प्राणायाम द्वारा सूर्यचक्र वेध करनेका अनुष्ठान कहा है। इस कार्यके लिये जपकर्ता प्रतिदिन कमसे कम १२ वार प्राणायाम तो अवश्य ही करे।

' सूर्यनमस्कारका व्यायाम ' भी साधारण इसी कार्यके लिये है। जपकर्ता प्रतिदिन इस व्यायामको कमसे कम १२ वार तो अवश्य करे। साधारण शक्तिके तरुणके

लिये १०८ वार करना किसी तरह अधिक नहीं है। १२ बार करनेके लिये ४ मिनिट और १०८ वार करनेके लिये आधा घण्टा लगता है।

प्राणायाम और सूर्य नमस्कार व्यायाम करनेसे मनुष्यके अन्दरकी सौरशक्ति उद्दीपित होती है और सौरशक्ति शरीरमें संग्रहित भी होती है। 'सूर्यातपस्नान' करनेसे भी सौरशक्ति शरीरमें प्रविष्ट होती है। शरीरपरसे कपडे उतार कर, केवल लज्जा निवारणार्थही थोडा कपडा पहन-कर सूर्य प्रकाशमें थोडा समय शरीरको तपाया जाय। इससे बहुत लाभ हैं। जपकर्तानि सूर्यके साथ इस तरह अपना संबंध रखनेसे सौरशक्ति अपने शरीरमें आजाती है। जप-कर्ता जितना कर सके उतना करे।

छन्दः— गायत्री मन्त्रका छन्द 'गायत्री' है। 'गाय-त्री' जप करनेवालेका संरक्षण करती है। इस मन्त्रका यह छन्द है। जपकर्ता ऐसा छन्द अपनेमें धारण करे। अपनेमें संरक्षक शक्ति बढाकर निर्बलोंका संरक्षण कर-नेका छन्द अपने मनको लगाना योग्य है।

गायत्री मन्त्रके ऋषि-देवता-छन्द का यह तात्पर्य है। जपकर्ता इसे अपने स्मरणमें रखे और जप करे।

जपका गायत्री मन्त्र

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवःस्वस्ततः परम्।
गायत्रीं प्रणवं चान्ते जप एष उदाहृतः॥

कौशिक

इस प्रकार जपमंत्र ऐसा बनता है—

ॐ भूर्भुवः स्वः। तत् सवितुर्वरेण्यम्।
भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ॥

ऋ. ३।६२।१०; साम. १४६२; वा. यजु ३।३५

यह मन्त्र जपके लिये है। जपकर्ता अपने मनमें इस मंत्रके अर्थका मनन करे और जप करे। इस मन्त्रके संपूर्ण अर्थका ज्ञान होनेके लिये बडाभारी ग्रंथ लिखना चाहिये। हम यहां संक्षेपसे ही, जितना आवश्यक है उतनाही, भाव लिखते हैं—

वैयक्तिक उन्नति का भाव

ओंकार का भाव

(ओं=अ+उ+म्) १ 'अ' (आदिः भवति) प्रथम स्थानमें विराजता है। २ 'उ' (उत्कर्षति ह वै ज्ञानसंततिं) ज्ञान परंपराका उत्कर्ष करता है। ३ 'म' (मिनोति ह वा एतत् सर्वं) इस सबका परिमाण जानता है तथा सबका आकलन करता है। ये ईश्वरके लक्षण हैं। जपकर्ता ईश्वरका पुत्र है, इसलिये उस पुत्रने अपने पिताके समान मुख्य बनना, ज्ञान बढाना और, उससे अनेक विष-योंका आकलन करना, (ओंकारका यह अर्थ मांडूक्य उपनिषदमें है।)

व्याहृतियोंका भाव

४ (भूः सत्तायां) अपना अस्तित्व रखना, ५ (भुवः अवकल्पने चिन्तने च) विचार करना, ज्ञान प्राप्त करके सोचना, ६ (स्वः, स्वर्, स्वर्गः, सुवर्गः) उत्तम वर्गको प्राप्त करना। अपना अस्तित्व सुरक्षित रखना, ज्ञान प्राप्त करके मनन करना और उत्तम वर्गके लोगोंमें अपनी गणना हो ऐसा प्रयत्न करना। जपकर्ता इस प्रकार अपनी उन्न-तिका प्रयत्न करे।

मन्त्रका भाव

७ (सवितुः देवस्य तत् वरेण्यं भर्गः) सब जगत् अप-नेमेंसे उत्पन्न करनेवाले देवके उस श्रेष्ठ तेजका हम सब मिलकर (धीमहि) ध्यान करके धारण करते हैं, (यः नः धियः प्रचोदयात्) जो तेज हम सबकी बुद्धियोंको श्रेष्ठ कर्म करनेकी प्रेरणा करे।

यो देवः सवितास्माकं धियो धर्मादिकर्मणि।
प्रेरयेत्तस्य तद्भर्गस्तद्वरेण्यमुपास्महे॥

सौरतेजका अपनेमें धारण करना है। उसकी रीति ऊपर बतायी है। यह जपकर्ता अपने ध्यानमें धारण करके जप करे।

राष्ट्रीय उन्नतिका भाव

जपकर्ता अपने मनमें ऊपर दिया हुआ भाव सामूहिक अथवा राष्ट्रीय दृष्टिसे निश्चित करके धारण करे, वह इस तरह है- १ " (मेरा भारत राष्ट्र राष्ट्रमालिकामें) प्रथम स्थानमें विराजे, २ (उसका) उत्कर्ष होवे और ३ (उसको सब परिस्थितिका ज्ञान होकर) उसका आकलन होवे। ४ (मेरे भारत राष्ट्रका स्वतंत्र) अस्तित्व रहे। ५ वह ज्ञानसंपन्न होवे और ६ उसकी गणना श्रेष्ठ राष्ट्रोंमें होवे। ७ अपनेमेंसे

सब सृष्टि उत्पन्न करनेवाले परमदेवके उस श्रेष्ठ तेजका ध्यान और धारण हमारा भारत राष्ट्र करे। इस आध्यात्मिक तेजसे तेजस्वी बना हुआ हमारा भारत राष्ट्र जगत्में स्थायी शान्तिकी स्थापना करनेके श्रेष्ठ कार्यमें पूर्णताके साथ यशस्वी होवे. "

इस तरह जपकर्ताने वैयक्तिक और राष्ट्रीय अभ्युदयका इस मन्त्रमें स्थित भाव अपने मनमें धारण करना चाहिये और जप करना चाहिये।

ज्ञानसे उत्कर्ष

[६] जप करनेवाला जप करनेके दिनोंमें तथा पश्चात् भी वेदके मंत्र, उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति आदि धर्मग्रन्थोंका अर्थज्ञानपूर्वक प्रतिदिन घण्टा आधा घण्टा अध्ययन करे। कमसे कम एक मन्त्र अथवा एक श्लोकका तो अध्ययन अर्थज्ञान और मनन पूर्वक अवश्य करे।

पूर्व दिशामें मुख

[७] जपकर्ता जप करनेके लिये पूर्व दिशाकी ओर मुख करके बैठे, जपका प्रारंभ होनेके पश्चात् जपकी समाप्ति होने तक अपना आसन छोडकर बीचमेंही जहांतक संभव हो वहां तक इधर उधर न जावे। शरीर अस्वस्थ होनेपर ही आवश्यक हलचल करे। बैठनेके लिये आसन तीन चार अंगुल मोटा तथा नरम सुखसे बैठने योग्य होवे।

दोवार प्रार्थना

[८] जपकर्ता दैनिक जपका प्रारंभ करनेके पूर्व तथा जपकी समाप्ति होनेपर अर्थात् दो वार परमेश्वरकी प्रार्थना भक्ति युक्त अन्तःकरणसे करे। यह (पृ० २ पर देखो) प्रार्थना "हमारा उद्देश्य विश्वशान्ति है।" इस शीर्षकके नीचे दी है। परमेश्वर अपने सामने है और वह अपनी प्रार्थना सुन रहा है इस श्रद्धासे प्रार्थना करनी चाहिये। यह प्रार्थना अपनी मातृभाषामें जपकर्ता करे, पर प्रार्थनाका भाव जैसा यहां दिया है वैसाही हो।

कुविचार दूर करना

[९] जपके दिनोंमें शक्य हो सके इतना यत्न करके कुविचार, अभद्र शब्दोच्चार, कुत्सित आचार, व्यवहार, वैयक्तिक तथा सामूहिक दुराचार जपकर्ता न करे। शक्य हो सके उतना यत्न करके सदाचार करनेका यत्न करना उचित है।

गच्छतस्तिष्ठतो वापि स्वेच्छया कर्म कुर्वतः।
अशुचेर्वा विना संख्यां तत्सर्वं निष्फलं भवेत्॥

भ्रमण करना, खडा रहना, स्वेच्छासे दूसरा कार्य करना, अपवित्र रहना, गिनती न करके जप करना, इससे जप निष्फल होता है। तमाखू खाना, बीडी पीना, आदि भी करना योग्य नहीं है।

[१०] जपकर्ताने जपके दिनोंमें आये स्वप्न तथा अन्य अनुभव न भूलते हुए लिखकर रखने चाहिये।

[११] रोग प्रवास आदि अपरिहार्य कारणोंको छोडकर दूसरे किसी भी कारणसे प्रारंभ किया अनुष्ठान बीचमेंही बंद नहीं रखना चाहिये। एक वार अनुष्ठान शुरू किया तो पुरश्चरण समाप्त होनेतक चलाना ही चाहिये। अपने आलस्यके कारण बीचमें व्यत्यय नहीं आना चाहिये।

[१२] जपके दिनोंमें जपकर्ता अपने इन्द्रियोंका और मनका जहांतक होसके वहां तक संयम करे।

दशांश हवन

[१३] जितना जप होगा उसका दशांश हवन करना चाहिये। यदि जप २४०००००० चोवीस लक्ष हुआ तो हवन २४०००० दो लाख चालीस हजार होना चाहिये। गायत्री मंत्रके अन्तमें 'स्वाहा' बोलनेसे हवन मंत्र होता है जैसा "तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् स्वाहा" यह मंत्र बोलकर आहुति देनी चाहिये। हवनके लिये तिल, चावल, गौका शुद्ध घृत, सुगंधित सामग्री, चन्दन आदि यह हवन द्रव्य है। गौके शुद्ध घीके सिवाय दूसरा कोई घी लेना नहीं चाहिये। यज्ञसे गौरक्षण होता है वह इसी तरह है। भैंसकी अथवा डाल्डा मिश्रित बजारका घी बर्तना नहीं चाहिये। जपकर्ता यथा विधि अग्नि प्रदीप्त करके गायत्री मंत्रसे हवन करे।

जपकर्ता अपने स्थानमें हवन करनेके लिये समर्थ न हो तो वह हमें लिखे। हम उनके जपके अनुसार दशांश हवन यहां करेंगे। इसीलिये जपकर्ता हमें लिखे कि इतना जप हुआ है। और इतना हवन हुआ है अथवा नहीं हुआ।

हवनके अभावमें चार गुणा जप

चतुर्विंशतिलक्षं तु यज्ञकल्पमतं यथा ।
कल्पोक्तैव कृते संख्या त्रेतायां द्विगुणा भवेत् ।
द्वापरे त्रिगुणा प्रोक्ता कलौ संख्या चतुर्गुणा ।
होमाशक्तौ जपं कुर्यात् होमसंख्या चतुर्गुणम् ।
वैशंपायन

" २४ लाख पुरश्चरणका जप है । यह संख्या कृतयुगकी है, त्रेतामें इससे दुगुनी, द्वापरमें तीन गुनी और कलियुगमें चौगनी संख्या (जपकी) होनी चाहिये । दशांश हवन करना चाहिये । हवन न हो सकता हो तो हवन संख्याके चार गुणा जप किया जावे । " इस तरह हवन न करना हो तो चार गुणा जपही करना ।

[१४] प्रति छः मासके पश्चात् अथवा एक वर्षके बाद जपकर्ताओंका संमेलन पारडीमें स्वाध्यायमंडलके आनन्दाश्रममें किया जावे । इसमें जपकर्ता संमिलित हों और वे जपका अनुष्टान, उसके विघ्न तथा उनका परिहार इसका विचार करें । अपने अनुभवोंका भी विचार करें ।

[१५] यहां जपकर्ताके सब अंग जपकार्यमें लगाये जाते हैं यह बताया है जैसा वाणीसे, मुखसे जप, कानोंसे उसका श्रवण, आंखसे सूर्यपर (थोडा समय) त्राटक, शरीरसे सूर्य नमस्कार, प्राणायामसे श्वसन इन्द्रिय, सूर्यातपस्नानसे संपूर्ण शरीर, मन्त्रार्थके मननसे मन बुद्धि चित्त अहंकार, हवनके सुगंधसे नाक, हवनके कार्यमें हाथ, इस रीतिसे जपकर्ताके सब अवयव इस अनुष्ठानमें प्रयुक्त हो रहे हैं । जपकर्ताको तो जप करनाही चाहिये । परंतु बाकीके अनुष्ठानमेंसे जो हो सके वह करना, न हो सके अथवा समझमें न आसके वह न करना ।

अनुष्ठानके केन्द्र

[१६] जहां कमसे कम तीन जपकर्ता मिलेंगे वहां जपके अनुष्ठानका केन्द्र स्थापित किया जायगा । जितने अधिक जपकर्ता मिलेंगे उतना अधिक अच्छा होगा । जहां जप केन्द्र स्थापित किया जायगा, वहां उसका एक संचालक होगा और शेष लोग उसके सहायक होंगे ।

[१७] अनुष्ठानके संबंधमें किसीको कुछ जानना हो तो वह हमारे पाससे पूछकर वह ज्ञान प्राप्त करे ।

[१८] प्रथम सब ज्ञान प्राप्त करना, पीछे विचार करना और पश्चात् अनुष्ठानका प्रारंभ करना । विकारवशतासे एकदम अनुष्ठान शुरू करना और कुछ समयके बाद वह बंद करना योग्य नहीं है । प्रारंभ करनेपर पुरश्चरण होनेतक वह करनाही चाहिये ।

[१९] यह पत्रक पहुंचनेके पश्चात् अपने इष्टमित्रोंसे इस अनुष्ठानके संबंधमें विचार करना, तथा अपने स्थानपर अनुष्ठान करनेवाले कितने मिलते हैं इसका निश्चय करना और जो करनेके लिये तैयार हैं उनके नाम तथा पते लिखकर हमारे पास भेजना और अपने स्थानमें जप केन्द्र स्थापन करना ।

[२०] किसी मासके शुक्लपक्षके किसी उत्तम दिनमें यह अनुष्ठान प्रारंभ किया जासकता है ।

धनसे सहायता

[२१] हवन, यज्ञ, अन्नदान तथा अन्य अनुष्ठान योग्य रीतिसे करनेकी हमने व्यवस्था की है । हवनादि कार्योंमें व्यय बहुत है । भारतराष्ट्रका अभ्युदय और विश्व शान्ति जैसे महान कार्यमें जो अपने द्रव्यद्वारा सहाय्य करना चाहते हैं, वे नीचे लिखे पतेपर जो भेजना हो वह भेज दें । द्रव्य प्राप्त होनेपर कार्यालयसे प्राप्तिपत्र भेजा जायगा ।

भारतमें ऋषिप्रणीत वैदिक सत्य सनातन धर्मकी जाग्रति हो, इस धर्मजाग्रतिसे भारतका आध्यात्मिक तेज बढे और भारतके प्रयत्नसे विश्वमें स्थायी शान्तिकी स्थापना हो ।
(व्यक्तिमें) शान्ति, (राष्ट्रमें) शान्ति, (और विश्वमें) शान्ति (स्थापन हो)

निवेदनकर्ता
श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
मंत्री- जपानुष्ठान समिति,
स्वाध्यायमंडल आनंदाश्रम, किल्ला- पारडी, जि. सूरत

वेदोंकी संहिताएँ

	मूल्य	डा. व्य.
(१) ऋग्वेद (इसमें सर्वानुक्रम, देवतासूची, ऋषिसूची, मंत्रसूची आदि भी है।)	१०	२
(२) यजुर्वेद (वाजसनेयी-संहिता)	३	॥
(३) ,, काण्व-संहिता	४	।॥
(४) ,, मैत्रायणी-संहिता	६	१।
(५) ,, काठक-संहिता	६	१।
(६) ,, सर्वानुक्रम सूत्र (वाजस०)	१॥	॥
(७) ,, वा० सं० पादसूची	१॥	॥=
(८) ,, ऋग्वेद मंत्रसूची	२	॥

सामगान

	मू.	डा. व्य.
सामवेद कौथुम शाखीय ग्रामगेय (वेय प्रकृति) गानात्मकः प्रथमः तथा द्वितीयो भागः	६	१
प्रकृति गान (गान भाग)	४	॥

दैवत-संहिता

दैवत संहिता (प्रथम भाग)	६	१॥
(इसमें अग्नि देवता, इन्द्र देवता, सोम देवता, मरुद्देवता ये चार देवता हैं और मंत्रसंख्या ७५३१ है।)		
दैवत संहिता (तृतीय भाग)	६	१
(इस तृतीय भागमें कुल १२८ देवता हैं और मंत्रसंख्या ३७५८ है।)		

हिन्दी पुस्तकें

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

१ से १८ ऋषियोंका दर्शन (एक जिल्द)
(१) मधुच्छन्दा, (२) मेधातिथि, (३) शुनःशेप, (४) हिरण्यस्तूप, (५) कण्व, (६) सव्य, (७) नोधा, (८) पराशर, (९) गोतम, (१०) कुत्स, (११) त्रित, (१२) संवनन, (१३) हिरण्यगर्भ, (१४) नारायण, (१५) बृहस्पति, (१६) वागाम्भृणी, (१७) विश्वकर्मा, (१८) सप्त ऋषि — रु. १६, डा. व्य. १॥
(१९) वसिष्ठ ऋषिका दर्शन, — ७ रु.) डा. व्य. १॥

यजुर्वेदका सुबोध भाष्य

(१) प्रथम अध्याय श्रेष्ठतम कर्मका आदेश	१॥	≈
(२) ३० वा ,, मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन	२	≈
(३) ३२ ,, एक ईश्वरकी उपासना	१।	≈
(४) ३६ ,, सच्ची शांतिका सच्चा उपाय	१॥	≈
(५) ४० ,, (आत्मज्ञान) ईशोपनिषद्	२	।=

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य

३ भागोंमें (काण्ड १-१८ पूर्ण)	२६	५

उपनिषद् ग्रंथमाला

(१) ईशोपनिषद्	२	।=
(२) केन उपनिषद्	१॥	।
(३) कठ उपनिषद्	१॥	।
(४) प्रश्न उपनिषद्	१॥	।
(५) मुण्डक उपनिषद्	१॥	≈
(६) माण्डूक्य उपनिषद्	॥	=
(७) ऐतरेय उपनिषद्	॥।	≡
ईश्वरका साक्षात्कार प्रथम भाग	३	॥

श्रीमद्भगवद्गीता

भगवद्गीता पुरुषार्थबोधिनी (टीका समेत)	१२॥	२
गीताका राजकीय तत्त्वालोचन	२	।=

वेदोंके व्याख्यान

१ मधुच्छन्दा ऋषिका अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन। २ वैदिक अर्थव्यवस्था और स्वामित्वका सिद्धान्त। ३ अपना स्वराज्य। ४ श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घायु। ५ व्यक्तिवाद और समाजवाद। ६ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः। ७ वैयक्तिक जीवन और राष्ट्रीय उन्नति। ८ सप्त व्याहृतियाँ। ९ वैदिक राष्ट्रगीत। १० वैदिक राष्ट्रशासन। ११ वेदोंका अध्ययन और अध्यापन। १२ वेदका श्रीमद्भागवतमें दर्शन। १३ प्रजापति संस्थाद्वारा राज्यशासन। १४ त्रैत, द्वैत, अद्वैत और एकत्वके सिद्धान्त। १५ क्या यह संपूर्ण विश्व मिथ्या है? १६ ऋषियोंने वेदोंका संरक्षण किस तरह किया? १७ वेदके संरक्षण और प्रचारके लिये आपने क्या किया है? १८ देवत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान। १९ जनताका हित करनेका कर्तव्य। २० मानवके दिव्य देहकी सार्थकता। २१ ऋषियोंके तपसे राष्ट्रका निर्माण। प्रत्येक व्याख्यानका मूल्य ।=) आने, डा. व्य. =)

मंत्री- स्वाध्याय-मंडल, भारतमुद्रणालय, आनन्दाश्रम, किल्ला पारडी, (जि. सूरत)

डा. व्य. के साथ रजिस्ट्रेशन एवं पेकींग खर्च संमिलित नहीं है।

मुद्रक और प्रकाशक- व. श्री. सातवळेकर, बी. ए., भारत-मुद्रणालय, किल्ला पारडी (जि. सूरत)

[१५६] गौके चर्मसे धनुष्यकी डोरी।

पायुर्भारद्वाजः। इषव। त्रिष्टुप्। (ऋ० ६।७५।११)

सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः संनद्धा पतति प्रसूता।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन्॥ ४३९॥

(अस्याः दन्तः) इस बाणका दाँतके सदृश भाग (मृगः सुपर्णं वस्ते) शत्रुओंको ढूँढता हुआ अच्छा पर या डेना धारण करता है, (गोभिः संनद्धा) बैलके चमडेकी तांतसे बनाई धनुष्यकी डोरी (प्रसूता पतति) प्रेरित होनेपर जा गिरती है; (यत्र) जहाँ (नरः) नेता वीर लोग (सं द्रवन्ति च) इकट्ठे होकर और अलग अलग ढंगसे दौडते हैं, (तत्र) उस युद्धभूमिमें (इषवः अस्मभ्यं शर्म यंसन्) बाण हमें सुख पहुंचा दें।

[१५७] गोचर्मसे वेष्टित ढोल।

ब्रह्मा। वनस्पतिः, दुन्दुभि। अनुष्टुप्। (अथर्व ५।२१।३)

वानस्पत्यः संभृत उस्रियाभिर्विश्वगोत्र्यः।

प्रत्रासममित्रेभ्यो वदाज्येनाभिघारितः॥ ४४०॥

(उस्रियाभिः संभृतः) गायोंके चमडोंसे भली भाँति गठित किया गया तू (वानस्पत्यः) पेडकी लकडीसे उत्पन्न है, (विश्वगोत्र्यः) सब प्रकार भूमिका रक्षक और (आज्येन अभिघारितः) घृतसे सींचा हुआ तू (अमित्रेभ्यः प्रत्रासं वद) शत्रुओंके लिए कष्टोंकी घोषणा कर।

उस्रियाभिः संभृतः = गौओंसे अर्थात् चमडोंसे टंका ढोल।

ब्रह्मा। वनस्पतिः, दुन्दुभिः। जगती। (अथर्व ५।२०।१)

उच्चैर्घोषो दुन्दुभिः सत्वनायन् वानस्पत्यः संभृत उस्रियाभिः।
वाचं क्षुणुवानो दमयन्त्सपत्नान्त्सिंह इव जेष्यन्नभि तंस्तनीहि॥ ४४१॥

(उच्चैः घोषः सत्वनाऽयन्) जिसका ऊँचा शब्द है और जो बल बढाता है, ऐसा (वानस्पत्यः दुन्दुभिः) पेडका बना हुआ वाद्यविशेष (उस्रियाभिः संभृतः) गायके चमडोंसे वेष्टित होकर (वाचं क्षुणुवानः) शब्द करता हुआ (सपत्नान् दमयन्) दुश्मनोंको दबाता हुआ और (सिंह इव जेष्यन्) सिंहके समान विजय चाहता हुआ यह ढोल (अभि संस्तनीहि) गरजता रहे।

उस्रिया = गाय, गोचर्म, बैलका चमडा, यह चमडा ढोलपर लगाया जाता है। यहां 'गौ' वाचक 'उस्रिया' पद गोचर्मके लिये प्रयुक्त हुआ है।

[१५८] धेनुरूपी वाणी

नेमो भार्गवः। वाक्। त्रिष्टुप्। (ऋ० ८।१००।११)

देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु॥ ४४२॥

(देवाः देवीं वाचं अजनयन्त) देवोंने दिव्य वाणीका सृजन किया, (विश्वरूपाः पशवो तां वदन्ति) सभी रूप धारण करनेवाले पशु उसे बोलते हैं; (सा धेनुः वाक्) वह गोतुल्य वाणी (मन्द्रा)

आनन्ददायक (नः इषं ऊर्जं दुहाना) हमारे लिए अन्न तथा बलका दोहन करती हुई (सुस्तुता) भली भाँति प्रशंसित होनेपर (अस्मान् उप आ एतु) हमारे निकट चली आये।

धेनुः वाक् = गौ वाणी है।

[१५९] घीसे कलिको शिक्षा।

बादरायणिः। अग्निः। विराट् पुरस्ताद्बृहती। (अथर्व० ७।११४।१)

इदमुग्राय बभ्रवे नमो यो अक्षेषु तनूवशी।

घृतेन कलिं शिक्षामि स नो मृडातीदृशे ॥ ४४३ ॥

(बभ्रवे उग्राय) भूरे रंगवाले और भीषण स्वरूपवाले वीरके लिए (इदं नमः) यह नमन है, (यः अक्षेषु तनूवशी) जो इन्द्रियोंके विषयमें शरीरको वशमें रखनेवाला है, (सः नः ईदृशे मृडाति) वह हमें ऐसी दशामें भी सुख देता है, इसलिए मैं (घृतेन कलिं शिक्षामि) घीके समान स्नेहसे कलह करनेवालोंको सिखाता हूँ।

[१६०] गौ और बछडा।

नोधा गौतमः। इन्द्रः। बृहती। (ऋ० ८।८८।१)

तं वो दस्मं ऋतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः।

अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ ४४४ ॥

(वः) तुम्हारे (तं) उस (ऋतीषहं) शत्रुओंको बाधा पहुँचानेवाले (दस्मं) देखने योग्य (वसो अन्धसः मन्दानं) बर्तनमें रखे हुए सोम रसरूप अन्नका सेवन करके हर्षित होते हुए (इन्द्रं गीर्भिः) इन्द्रको वाणियोंसे (धेनवः स्वसरेषु न) गौएँ अपने निवासस्थानोंमें (वत्सं अभि) बछडेके सामने जाती हैं, वैसेही सामने जाकर (नवामहे) हम नमन करते हैं।

धेनव. स्वसरेषु वत्सं अभि = गायें अपने निवासस्थानोंमें अपने बछडेके पास जाती हैं।

गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः। अग्निः। जगती। (ऋ० २।२।२)

अभि त्वा नक्तीरुषसो ववाशिरेऽग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः।

दिव इवेदरतिर्मानुषा युगा क्षपो भासि पुरुवार संयतः ॥ ४४५ ॥

हे अग्ने ! (स्वसरेषु) गौशालाओंमें (धेनवः वत्सं न) गायें जिस भाँति बछडेको चाहती हैं, वैसे ही (नक्तीः उषसः) सायंकाल और उषःकाल (त्वां अभि ववाशिरे) तुझे चाहते हैं, हे (पुरुवार) बहुतोंसे सराहना या पानेवाले अग्ने ! (संयतः) तू वेदीमें रहते समय (दिवः इव) प्रकाशके तुल्य (अरतिः इत्) गतिमान होते हुए (मानुषा युगा) मानवी जीवनमें दिन (क्षपाः) या रात्रीके समय (आभासि) चारों ओर प्रकाशमान बना रहता है।

स्वसरेषु धेनवः वत्सं अभि ववाशिरे = अपनी गोशालामें रहनेवाली गौवें अपने बछडेको चाहती हैं।

हर्यतः प्रागाथः। अग्निः हवींषि वा। गायत्री। (ऋ० ८।७२।१४)

ते जानत स्वमोक्यं१सं वत्सासो न मातृभिः।

मिथो नसंत जामिभिः ॥ ४४६ ॥

(मातृभिः वत्सासः न) माताओंके साथ बछडे जिस तरह बडी आसानीसे अपने घर चले जाते

हैं, उसी प्रकार (ते स्वं ओक्यं सं जानत) वे अपने निवास स्थानको भली प्रकार जानते हैं, और वे (मिथः जामिभिः नसंत) बन्धुओंसे परस्पर मिलते हैं।

मातृभिः वत्सासः स्वं ओक्यं संजानत = गोमाताओंके साथ बछडे अपने घरको पहचानते हैं।

त्रिशोकः काण्वः । इन्द्रः । अनुष्टुप् । (ऋ० ८।९५।१)

आ त्वा गिरो रथीरिवाऽस्थुः सुतेषु गिर्वणः।

अभि त्वा समनूषतेन्द्र वत्सं न मातरः॥ ४४७॥

हे (गिर्वणः इन्द्र) भाषणोंद्वारा प्रार्थना करने योग्य इन्द्र ! (रथीः इव) रथारूढ वीरके तुल्य (सुतेषु) सोमरसोंके निचोडनेपर (गिरः त्वा आतस्थु) हमारे भाषण तेरे चारों ओर होने लगे और (वत्सं मातरः न) बछडेको देख जैसी गौएँ शब्द करती हैं, उसी प्रकार (त्वा अभि समनूषत) तुझे लक्ष्यमें रखकर प्रशंसा पर वाक्य कहने लगे।

मातरः वत्सं अभि = गोमाताएं अपने बछडेके पास जाती हैं।

शंयुर्बार्हस्पत्य । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ० ६।४५।२५)

इमा उ त्वा शतक्रतोऽभि प्र णोनुवुर्गिरः।

इन्द्र वत्सं न मातरः॥ ४४८॥

हे (शतक्रतो इन्द्र) सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! (इमाः गिरः) ये भाषण (त्वा अभि) तेरे सम्मुख (मातरः वत्सं न) गौएँ बछडेकी ओर जिस तरह वेगसे चली जाती हैं, वैसे ही (प्र नोनुवुः) अधिकतया झुक जाते हैं- हम विनम्र होकर गौएँ बछडेके समीप प्रेमभरी निगाहसे जाती हैं, उसी प्रकार तेरे सम्मुख खडे रहते हुए भाषण करने लगते हैं।

इन्द्राणी। सपत्नीबाधनम् । पङ्क्तिः । (ऋ० १०।१४५।६)

उप तेऽधां सहमानामभि त्वाधां सहीयसा।

मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु॥ ४४९॥

(सहमानां) सौतका पराभव करनेवाली औषधिको (ते उप अधां) तेरे सिरहाने रख चुकी हूँ (सहीयसा त्वा अभि अधां) इस प्रबल वनस्पतिसे तुझको चारों ओर घेर लेती हूँ, (ते मनः) तेरा मन (मां अनु) मेरे पीछे उसी तरह (धावतु) दौडता चला आए जैसे (गौः वत्सं इव) गाय बछडेकी ओर दौडती जाती है या (पथा वाः इव) राहपरसे जल बहता है।

ऐन्द्रो लवः । आत्मा (इन्द्रः) । गायत्री । (ऋ० १०।११९।४)

उप मा मतिरस्थित वाश्रा पुत्रमिव प्रियम् । कुवित्सोमस्यापामिति॥ ४५०॥

(प्रियं पुत्रं वाश्रा इव) प्यारे बछडेके समीप जैसे रँभानेवाली गौ पहुँचती है, वैसे ही (मतिः मा उप अस्थित) लोगोंकी स्तुति मेरे समीप आपहुँची है क्योंकि (सोमस्य कुवित् अपां इति) मैंने सोमरसका पान खूब किया है।

सिन्धुक्षित् प्रैयमेधः । नद्यः । जगती । (ऋ० १०।७५।४)

अभि त्वा सिन्धो शिशुमिन्न मातरो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः।

राजेव युध्वा नयसि त्वमित्सिचौ यदासामग्रं प्रवतामिनक्षसि॥ ४५१॥

हे (सिन्धो) नदि ! (शिशुं) बछडेके समीप (मातरः धेनवः) गो-माताएँ (वाश्राः पयसा इव) रँभाती हुई दूधसे युक्त होकर चली जाती हैं, वैसे ही (त्वा अभि अर्षन्ति) तेरे समीप अन्य

नदियाँ आती हैं, (यत् आसां प्रवतां अग्रं) जो तू इन बहनेवाली नदियोंके आगे (युध्वा राजा इव) लडनेवाले नरेशके समान (इनक्षसि) व्याप्त होती है और (सिचौ त्वं इत् नयसि) सींचने-वाले किनारोंको तूही जलसे बहा ले जाती है।

ब्रह्मा । अध्यात्मं । त्रिष्टुप् । (अथर्व० १३।१।४१)

अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् ।

सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन् ॥ ४५२ ॥

(एना गौः अवः परेण, परः अवरेण पदा वत्सं बिभ्रती) यह गाय निम्नस्थानवालेको दूरके पदसे और दूर खडे हुएको समीपवाले पदसे बछडेका धारण करती हुई (उत् अस्थात्) ऊपर उठती है, (सा कद्रीची कं स्वित् अर्धं परा अगात्) वह कहाँसे आती है, और किस अर्धभागके समीप जाती है, वह (क स्वित् सूते) कहाँ प्रसूत होती है (अस्मिन् यूथेन) इस झुंडमें तो नहीं होती है।
गौ वत्सं बिभ्रती = गौ बछडेका पोषण करती है।

पुरुहन्मा आंगिरसः । इन्द्रः । पुरउष्णिक् । (ऋ० ८।७०।१५)

कर्णगृह्या मघवा शौरदेव्यो वत्सं नस्त्रिभ्य आनयत् ।

अजां सूरिर्न धातवे ॥ ४५३ ॥

(सूरिः) विद्वान पुरुष (धातवे अजां न) पीनेके लिए बकरीको जैसे लिवा लाता है, वैसे ही (मघवा) ऐश्वर्यसंपन्न इन्द्र (नः) हमारे लिए (शौर देव्यः) युद्धसे प्राप्त की गयी गौएं जो कि (कर्णगृह्याः) कानमें पकडने योग्य हैं (वत्सं त्रिभ्यः आनयत्) बछडेसहित तीन लोगोंसे ले आए।
शौरदेव्यः कर्णगृह्याः वत्सं आनयत् = शूरके प्रदानके लिये योग्य, कान पकडकर लाने योग्य गौवें बछडेको अपने साथ लाती हैं।

प्रियमेध आंगिरसः । (अर्धर्चः) विश्वेदेवाः (उत्तरार्ध०) वरुणः । (ऋ० ८।६९।११)

अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत ।

वरुण इदिह क्षयत्तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव ॥ ४५४ ॥

(इन्द्रः अपात्) इन्द्रने सोमपान किया, (अग्निः अपात्) अग्निने सोम पी लिया, (विश्वे देवा अमत्सत) सभी देव हर्षित हुए, (वरुणः इत्) वरुण भी (इह क्षयत्) इधर निवास करे, क्योंकि (संशिश्वरीः वत्सं इव) इकट्ठी होती हुई गायें जैसे बछडेके समीप जाती हैं, वैसे ही (आपः तं अभ्यनूषत) जलोंने उसके समीप जाकर प्रशंसा की है।
संशिश्वरीः वत्सं अभ्यनूषत = बछडोंवाली गौवें अपने बछडेके साथ रहती हैं।

मनुर्वैवस्वतः । यज्ञः । गायत्री । (ऋ० ८।३१।४)

अस्य प्रजावती गृहेऽसश्चन्ती दिवे दिवे । इळा धेनुमती दुहे ॥ ४५५ ॥

(अस्य गृहे) इसके घरपर (धेनुमती) गायोंसे युक्त (असश्चन्ती) इधर उधर न जाती हुई (दिवे दिवे) हर दिन (प्रजावती इळा दुहे) प्रजावाली गौ देवता दोहन करती है। दूध देती है।
धेनुमती प्रजावती इळा दिवे दिवे दुहे = जिसे गौवें हुई हैं ऐसी बछडोंवाली गौ प्रतिदिन दूध देती है।

दीर्घतमा औचथ्यः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।१६४।२७)

हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात् ।

दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥ ४५६ ॥

(हिंकृण्वती) रँभाती हुई (वसूनां वसुपत्नी) धनोंकी स्वामिनी (मनसा वत्सं इच्छन्ती) मनःपूर्वक बछडेको चाहती हुई (अभि आगात्) हमारे सम्मुख आ गयी है, (इयं अघ्न्या) यह अवध्य गौ (अश्विभ्यां) अश्विनौके लिए पर्याप्त मात्रामें (पयः दुहां) दूध दे डाले और (सा) वह गौ (महते सौभगाय वर्धतां) बडे भारी सौभाग्यको पानेके लिए वृद्धिंगत हो जाए।

१ मनसा वत्सं इच्छन्ती अघ्न्या अभ्यागात् = मनसे बछडेकी इच्छा करनेवाली अवध्य गौ हमारे पास आगयी है।

२ सा पयः दुहां = वह गौ दूध दुह कर देवे।

गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । मरुत् । जगती । (ऋ० २।३४।८)

यद्युञ्जते मरुतो रुक्मवक्षसोऽश्वान् रथेषु भग आ सुदानवः ।

धेनुर्न शिश्वे स्वसरेषु पिन्वते जनाय रातहविषे महीमिषम् ॥ ४५७ ॥

(यत् सु-दानवः) जब दानशूर तथा (रुक्मवक्षसः) छातीपर स्वर्णमाला धारण करनेहारे (मरुतः) वीर मरुत् (भगे अश्वान् रथेषु आ युञ्जते) ऐश्वर्य पानेके लिए रथोंमें घोडे जोतते हैं, तब वे (धेनुः शिश्वे न) गौ अपने बछडेके लिए दूध देती है वैसेही (रातहविषे) हविष्यान्न देनेहारे (जनाय) लोगोंके लिए (स्वसरेषु) उनके ही खास घरोंमें ही (महीं इषं) बडी भारी अन्नसमृद्धि (पिन्वते) पर्याप्त मात्रामें दे देते हैं।

धेनुः शिश्वे इषं पिन्वते = गौ अपने बछडेके लिये दूधरूपी अन्न पिलाती है।

दीर्घतमा औचथ्यः । विश्वेदेवाः त्रिष्टुप् । (ऋ० १।१६४।२८)

गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ ।

सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥ ४५८ ॥

(गौः मिषन्तं वत्सं) गाय आंख मूंदकर पडे हुए अपने बछडेके (अनुप्राप्य) समीप आकर (अमीमेत) शब्द करती है, उसका (मूर्धानं मातवै) सरको चाटनेके लिए वह (हिङ् अकृणोत्) हिंकार करती है, (सृक्वाणं घर्मं) दूध टपकाते हुए अपने गर्भ लेनेको बछडा स्पर्श करे ऐसी (अभि वावशाना) चाह करनेवाली गाय (मायुं मिमाति) शब्द करती है और बछडेको (पयोभिः पयते) दूधकी धाराओंसे तृप्त करती है।

कुत्स आङ्गिरसः । अग्निः, औषसोऽग्निर्वा । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।९५।६)

उभे भद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्थुरेवैः ।

स दक्षाणां दक्षपतिर्बभूवाञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः ॥ ४५९ ॥

(यं) जिसे (दक्षिणतः) दाहिने हाथसे याजक (हविर्भिः) हविर्द्रव्योंसे (अञ्जन्ति) प्रदीप्त करते हैं, (सः) वह अग्नि (दक्षाणां दक्षपतिः) बलिष्ठोंका भी अधिपति (बभूव) हो चुका है, (भद्रे मेने न) दो सुन्दर महिलाओंने सेवा की जाय वैसे ही (उभे) ये दोनों प्रभा तथा रात्री इस अग्निकी (जोषयेते) सेवा कर रही हैं, और (वाश्राः गावः न) रंभाती हुई गौओंके तुल्य जैसे वे

बछडोंके निकट दौडती जाती हैं वैसे ही (एवैः) अपने कर्मोंसे वे दोनों ही इस अग्निके समीप (उप तस्थुः) आजाती हैं।

वाश्राः गावः उपतस्थुः = रंभानेवाली गौवें अपने बछडोंके पास आकर ठहरती हैं।

वामदेवो गौतमः। बृहस्पतिः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ४।५०।५)

स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण।

बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद्वावशतीरुदाजत् ॥ ४६० ॥

(सः) वह बृहस्पति (सुष्टुभा) अच्छी स्तुतिसे युक्त (ऋक्वता गणेन) तेजस्वी समूहसे तथा (रवेण) बडे भारी शब्दगर्जनसे भी (फलिगं वलं रुरोज) भेदवाले बल असुरको तोड डाला; पश्चात् (हव्यसूदः) हव्य पदार्थोंकी निर्माणयित्री (वावशतीः उस्रियाः) और रंभाती हुई गायोंको (कनिक्रदत् उत् आजत्) विजयध्वनि करते हुए प्राप्त किया।

हव्यसूदः वावशतीः उस्रियाः = हवनके लिये दूध देनेवाली रंभाती हुई गायें आगयी हैं।

[९६१] गायका बछडेके प्रति प्रेम

काङ्कायनः। अघ्न्या। जगती। (अथर्व० ६।७०।१)

यथा मांसं यथा सुरा, यथाऽक्षा अधिदेवने।

यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः।

एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ॥ ४६१ ॥

(यथा मांसं) जैसे मांसमे (यथा सुरा) जैसे सुरामें (यथा अधिदेवने अक्षाः) जैसे जुएके पासोंमें (यथा वृषण्यतः पुंसः) जिस प्रकार बलवान्, कामी पुरुषका (मनः स्त्रियां निहन्यते) दिल स्त्रीमें निरत होता है, (अघ्न्ये) हे अवध्य गौ। (एवा ते मनः) उसी प्रकार तेरा चित्त (वत्से अधि निहन्यतां) बछडेमें लगा रहे।

अङ्गिराः। २,४ वाय्वन्तरिक्षे, ६ दिवादित्यौ, ८ दिक्चन्द्रमसः। २, ४, ६, ८ सस्तारपंक्तिः। (अथर्व० ४।३९।२,४,६,८)

पृथिवी धेनुस्तस्या अग्निर्वत्सः। सा मेऽग्निना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम्।

आयुष्प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥ ४६२ ॥

अन्तरिक्षं धेनुस्तस्या वायुर्वत्सः। सा मे वायुना वत्सेनेष मूर्जं कामं दुहाम्।

आयुष्प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥ ४६३ ॥

द्यौर्धेनुस्तस्या आदित्यो वत्सः। सा म आदित्येन वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम्।

आयुष्प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥ ४६४ ॥

दिशो धेनवस्तासां चन्द्रो वत्सः। ता मे चन्द्रेण वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम्।

आयुष्प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥ ४६५ ॥

पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक तथा दिशाएं गायोंके समान हैं और उनके बछडे अग्नि, वायु, आदित्य तथा चन्द्रमा हैं। ये सभी गायें अपने अपने उन बछडोंद्वारा मुझे अन्न और बल इच्छाके अनुसार दें, तथा उत्तम दीर्घ जीवन, सन्तान, पुष्टि एवं धन प्रदान करें। मैं आत्मसमर्पण करता हूं।

अथर्वा । चन्द्रमाः, सांमनस्यम् । अनुष्टुप् । (अथर्व० ३।३०।१)

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातं इवाघ्न्या ॥ ४६६ ॥

(स-हृदयं) प्रेमपूर्ण हृदय (सां मनस्यं) मन शुभ विचारोंसे पूर्ण होना तथा (अ-विद्वेष) पारस्परिक निर्वैरता (वः कृणोमि) तुम्हारे लिए मैं करता हूँ। तुममेंसे (अन्य अन्य अभि हर्यत) हरएक परस्परके ऊपर प्रीति करे, (जातं वत्सं अघ्न्या इव) जैसे पैदा हुए बछडेके प्रति गौ प्यार दर्शाती है।

अथर्वा । कश्यपः, सर्वे ऋषयः, छन्दांसि च; विराट् । पङ्क्तिः । (अथर्व० ८।९।२)

यो अक्रन्दयत् सलिलं महित्वा योनिं कृत्वा त्रिभुजं शयानः ।
वत्सः कामदुघो विराजः स गुहा चक्रे तन्वः पराचैः ॥ ४६७ ॥

(त्रिभुजं योनिं कृत्वा) तीन भुजावाला आश्रयस्थान बनाकर (य: शयानः) जो विश्राम करनेवाला अपने (महित्वा सलिलं अक्रन्दयत्) महत्त्वसे जलको प्रक्षुब्ध बनाता है, (विराजः कामदुघः स वत्सः) तेजस्वी कामधेनुका वह बछडा (पराचैः गुहा) दूर और गुप्त (तन्वः चक्रे) शरीरोंको बनाता है।

विराजः कामदुघः स वत्सः = तेजस्वी कामधेनुका वह बछडा है।

[१६२] गायें गोशालामें जाकर बछडेको दूध देती हैं।

विरूप आङ्गिरसः । अग्निः । गायत्री । (ऋ० ८।४३।१७)

उत त्वाग्ने मम स्तुतो वाश्राय प्रति हर्यते । गोष्ठं गाव इवाशत ॥ ४६८ ॥

हे अग्ने! (मम स्तुत) मेरी स्तुतियां, (प्रति हर्यते वाश्राय) दूध चाहनेवाले बछडेके लिए (गावः गोष्ठं इव) गायें गोशालामें जैसी घुस जाती हैं, वैसे (त्वा आ शत) तुझको प्राप्त हुई हैं।

[१६३] बछडेको छोडकर गौएँ दूर न चली जायँ।

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । अश्विनौ । कृतिः । (ऋ० १।१२०।८)

मा कस्मै धातमभ्यमित्रिणे नो माकुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवो गुः ।
स्तनाभुजो अशिश्वीः ॥ ४६९ ॥

(अमित्रिणे कस्मै) किसी भी शत्रुके सामने तुम (नः) हमें (मा अभिधातं) मत रखो, (स्तनऽभुजः) अपने स्तनोंसे बछडेको पिलानेवाली (धेनवः) गायें (अ-शिश्वीः) बछडेको छोडकर (नः गृहेभ्यः) हमारे घरोंसे (अकुत्र) बहुत दूर कहीं भी (मा गुः) न चली जायँ ऐसा प्रबंध करो।

अ-कुत्र = जहां किसी ठौरका पता न हो ऐसे स्थानमें।

अ-शिश्वीः = शिशुरहित, बछडेको छोडकर बछडेसे बिछुडकर गायें दूर अज्ञात स्थानमें घूमती न रहें।

[१६४] बछडे और गायको ठीक बनाया।

वामदेवो गौतमः। ऋभवः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ४।३३।४)

यत्संवत्समृभवो गामरक्षन्यत्संवत्सं ऋभवो मा अपिंशन्।
यत्संवत्सं अभरन्भासो अस्या ताभिः शमीभिरमृतत्वमाशुः॥ ४७० ॥

(यत् ऋभवः) चूँकि ऋभुओंने (संवत्सं गां अरक्षन्) बछडेके सहित गायकी रक्षा की थी, (यत् ऋभवः) और जो ऋभुओंने (संवत्सं मा अपिंशन्) बछडेसे युक्त गौके विभिन्न अंगोंको ठीक ठीक बनवाया था, (यत् संवत्सं) तथा जो बछडेके साथ (अस्या भास अभरन्) इस गायको तेजस्वी बना दिया था, (ताभिः शमीभिः) ऐसे उन शक्तिपूर्ण कार्योंसे (अमृतत्वं आशुः) अमरपनको पहुंच गये।

ऋभुदेवोंने अश्विधर्मसे उत्तम पुष्ट तथा दुधारू गाय बना दी, और बछडेको दूध पीनेके लिये इस गायका अर्पण किया। इस तरह बछडा और गायका संरक्षण ऋभुदेवोंने किया।

[१६५] इन्द्रने बिछुडे गौओंको बछडोंके साथ युक्त किया।

बभ्रुरात्रेय। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ५।३०।१०)

समत्र गावोऽभितोऽनवन्तेहेह वत्सैर्वियुता यदासन्।
सं ता इन्द्रो असृजदस्य शाकैर्यदीं सोमासः सुषुता अमन्दन्॥ ४७१ ॥

(यत् अत्र गावः) चूँकि यहांपर गौएँ (वत्सैः वियुताः) बछडोंसे बिछुडी हुई (अभितः) चारों ओर (इह इह) इधर उधर (सं अनवन्त) भली भांति इकट्ठी होकर झुक झुककर दौडने लगीं, (इन्द्रः ताः सं असृजत्) इन्द्रने उन्हें बछडोंसे ठीक प्रकार जोड दिया, (यत् सुषुताः सोमासः) जब ठीक तरह निचोडे हुए सोमरस (ईं अस्य शाकैः अमन्दन्) इसे इसके समर्थ वीरोंके साथ हर्षित कर चुके।

सब गौओंको अपने अपने बछडोंके साथ संयुक्त कर दिया।

[१६६] गायें ग्राममें जाती है, बछडेके पास पहुँचती है।

अर्चन् हैरण्यस्तूपः। सविता। त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।१४९।४)

गाव इव ग्रामं यूयुधिरिवाश्वान्वाश्रेव वत्सं सुमना दुहाना।
पतिरिव जायां अभि नो न्येतु धर्ता दिवः सविता विश्ववारः॥ ४७२ ॥

(दिवः धर्ता) द्युलोकका धारणकर्ता (विश्ववारः सविता) सबके स्वीकारणीय सविता, (गावः ग्रामं इव) गायें जिस तरह गांवमें जाती हैं, या (अश्वान् युयुधिः इव) घोडोंके निकट योद्धा जैसे जाता है, या (सुमनाः दुहाना वाश्रा इव) अच्छी मनवाली, दूध देनेवाली, और रंभानेवाली गाय (वत्सं इव) बछडेके समीप जिस प्रकार जाती है वैसे ही और (जायां पतिः इव) पत्नीके समीप पति जैसे ही जाता है उसी प्रकार (नः अभि नि एतु) हमें अत्यन्त अधिकतया प्राप्त हो।

१ गावः ग्रामं = गायें ग्राममें जाती हैं।

२ दुहाना वाश्राः गावः वत्सं = दूध देनेवाली रंभानेवाली गौवें अपने बछडेके पास जाती हैं।